प्रथम परिशिष्ट

संशोधन तथा मूल पाठ पर टिप्पणियां

पृष्ठ ३, पं० १७—'निर्दिष्ट है' के आगे बढ़ावें—मार्गशीर्ष सं० १९२६=नवम्बर १९६९।

पृष्ठ ११, पं० १८–**अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ने से**–इस पर टिप्पणी–भीमसेन ने अष्टाध्यायी महाभाष्य ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित फर्रुखाबाद की पाठशाला में पढ़े थे (द्र०—पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी सं० पृष्ठ ८०५)। ऋ० द० ने पूर्ण संख्या ५९६ के पत्र में प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय को लिखा था—"भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही उसका पाण्डित्य है, अन्यत्र वह बालक है। द्र०–ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन भाग २, पृष्ठ ६३९, पं० ११-१५।

पृष्ठ १३, पूर्ण संख्या २६ पर निर्दिष्ट **पत्र-सारांश** पर दी गई टिप्पणी १ पं० १९ 'आधार पर बनाया है' के आगे बढ़ावें—सम्भवत: ऋ० द० को जयपुर राज्य में आने का निमन्त्रण भी इसी पत्र में दिया था। द्र०–'आर्यसमाज जयपुर के १०० वर्षों का इतिहास एवं स्मारिका' पृष्ठ २३। इस पत्र का उत्तर ऋ० द० ने सं० १९३३, माघ कृष्ण ४ बुधवार को दिया था। द्र०—पूर्ण संख्या ७८, भाग १, पृष्ठ १०६, १०८ पर छपा पत्र। पं० कालूरामजी के छापे गये पत्र-सारांश का मूल पत्र पं० भगवद्दत्त जी के पास लाहौर में था, जो देश विभाजन के समय वहीं नष्ट हो गया (द्र०–ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ १०८ की टि० सं० १) हमने जो सारांश छापा है, वह ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७८, भाग १, पृष्ठ १०६-१०८ पर छपे पत्र के आधार पर बनाया है।

पृष्ठ १३, पं० १२–'**१० प्रतियां विज्ञापन**'–यह वही वेदभाष्य सम्बन्धी विज्ञापन है, जो ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १ में पूर्ण संख्या ७४ (पृष्ठ ९४-१०५) पर छपा है।

पृष्ठ १६ पं० २—**हर पक्ष में जाकर**·······**व्याख्यान देता हूं** पर टिप्पणी—

आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के अधिवेशनों की जो सन् ७८ की डेढ़ मास की तथा सन् १८८१-८२ की लगभग एक वर्ष सात मास की लिखित कार्यवाही आर्यसमाज के कार्यालय में सुरक्षित है, को देखने से विदित होता है कि उसके साप्ताहिक अधिवेशनों में एक बार ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के किसी प्रकरण को पढ़ा जाता था, उस पर विचार होता था तथा दूसरे सप्ताह किसी व्यक्ति का व्याख्यान होता था। सम्भवतः इसी कारण पं० गोपालराव हरि देशमुख ने अपने पत्र में 'हर पक्ष में जाकर······व्याख्यान देता हूं' लिखा होगा। बम्बई आर्यसमाज का 'एक सप्ताह ऋ० द० कृत किसी ग्रन्थ का वाचन, उस पर विचार तथा दूसरे सप्ताह में व्याख्यान' का कार्यक्रम बहुत उपयोगी था। उसका अनुकरण इस समय भी आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में होना चाहिये। इस से आर्यसमाज के सदस्य जहां ऋषि के ग्रन्थों और मन्तव्यों से परिचित होंगे, वहां उनमें अध्ययन की रुचि भी बढ़ेगी।

पृष्ठ १७, पं० ६—'**६ दिसम्बर १८८७**' के स्थान में '६ दिसम्बर १८७७' होना चाहिये।

पृष्ठ १७, टि० ३, पं० २५—'**तथा पृष्ठ ७०, पं० २।**' इस के आगे बढ़ावें—यतः स०प्र० के प्रथम संस्करण का १२वें समुल्लास पर्यन्त भाग सन् १८७५ में प्रकाशित हो गया था अतः यहां १२० पृष्ठ से आगे के अंश का '**दूसरा भाग**' शब्द से ग्रहण इष्ट नहीं है, अपितु 'दूसरा भाग' से अभिप्राय **१३वें १४वें** समुल्लास के अंश से है, जो नहीं छपा था।

पृष्ठ ३६, पं० १४—'**कृपा पत्र पाने से अत्यन्त प्रसन्न हुए।**' यह ऋ० द० का कौन सा पत्र है ? इसका हमें ज्ञान नहीं।

पूर्व निर्दिष्ट पत्र का ही पृष्ठ ४४, पं० ६-७ पर निर्देश हुआ है।

पृष्ठ ५३, पं० १६–'**मैंने भी विज्ञापन लगवा दिये**' यह विज्ञापन इसी भाग में पूर्ण संख्या ६७ (पृष्ठ ५०-५१) पर छपा है।

पृष्ठ ५४, पं० २४ तथा पृष्ठ ५५, पं० १—'**कल आप का कृपा पत्र पहुंचा**' ऋ० द० का यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन में पूर्ण संख्या १८६ (भाग १, पृष्ठ २४४-२४८) पर छपा है।

पृष्ठ ५५, पं० २८–'**कोई सूचना थी**' यहां 'कोई सूचना [न] थी' ऐसा पढ़ें।

पृष्ठ ५८, पं० ११–**'आप का भेजा हुआ विज्ञापन'**–ऋ० द० का यह विज्ञापन 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या १८८ (भाग १, पृष्ठ २४१-२४४ पर छपा है।

पृष्ठ ५६, पं० १४—**'आप पांच ही मिनट पर अड़ गये थे'**—पूर्वापर प्रसङ्ग के अनुसार यह संकेत मुन्शी प्यारेलाल जी के सत्प्रयत्न से १६-२० मार्च सन् १८७७ को सम्पन्न हुए मेला चांदापुर की ओर है।

पृष्ठ ५६, पं० २७-२८–**मुन्शी इन्द्रमणि और आपकी सेवा में दो पत्र क्रमशः भिजवाये गये'**—इन पत्रों के सम्बन्ध में हमें कहीं से कोई जानकारी नहीं मिली।

पृष्ठ ६० पर छपा पूर्ण **संख्या ७१ का पत्र** पं० लेखरामजी कृत जीवन चरित में दो स्थानों पर (हिन्दी सं० पृष्ठ ७७१ तथा ६८३) पर छपा है। इसी भूल के कारण हम से भी इसे दो स्थानों पर छापने की भूल हो गई। **पृष्ठ ७११** पर छपे पत्र पर तारीख नहीं है। दूसरे स्थान (पृष्ठ ७८३)पर छपे पत्र पर '१७ अगस्त सन् १८७८' तारीख विद्यमान है। इसे हमने आगे पूर्ण संख्या ७६ पर यथास्थान (पृष्ठ ६९-७० पर) छापा है। पूर्ण संख्या ७१ पर इसका छपना उचित नहीं है। इसी कारण पृष्ठ ६० की टि० २-३ तथा पृष्ठ ६१ की टि० १-२ भी **हटानी होगी**। पाठक इस भूल को ठीक करलें।

पृष्ठ ६१, पं० १८—**'उत्तर भेज चुका हु'**—द्र०-१२ अगस्त १८७८ पूर्ण संख्या ७० (पृष्ठ ५४-६०) पर छपा पत्र।

पृष्ठ ६२, पं० ४—**'फिर विज्ञापन की शिकायत'** पं० ६–**'उक्त विज्ञापन'**—इस का संकेत पूर्ण संख्या ६७ (पृष्ठ ५०-५१) पर छपे विज्ञापन की ओर है।

पृष्ठ ६५, पं० २५ तथा पृष्ठ ६६, पं० १—**वह** (कप्तान साहब) **मुंशी अहसानुल्ला साहब को लिखते हैं'**—कप्तान डबल्यू स्टुअर्ट का मुंशी अहसानुल्ला को लिखा पत्र उपलब्ध नहीं। श्री उमरावसिंह ने कप्तान स्टुअर्ट को इस प्रसङ्ग में जो पत्र लिखा था, उसे 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या २०० (भाग १, पृष्ठ २६७) पर छाप चुके हैं। उमरावसिंह के पत्र के उत्तर में कप्तान स्टुअर्ट ने जो पत्र लिखा था, उसे भी वहीं (पृष्ठ २६७ के) नीचे छाप दिया है।

पृष्ठ ६७, पं० २-३ '⋯⋯ **तीन वेदों को अस्वीकार कर दिया** ⋯⋯

समय आया तो चारों वेदों को सिर और आंखों ······'–इसका उत्तर ऋ० ने पूर्ण संख्या १६३ के पत्र में दिया है। द्र०—भाग १, पृष्ठ २५५ की पं० २३-२७।

पृष्ठ ६७, पं० १—'**कानपुर के विज्ञापन में २१ शास्त्रों पर आस्था प्रकट की थी**'—द्र०–कानपुर का विज्ञापन पूर्ण संख्या २२, भाग १, पृष्ठ ६-१२। इसके उत्तर में ऋ० द० ने पूर्ण संख्या १६३ के पत्र में स्पष्ट लिखा है कि '**कानपुर के विज्ञापन में उक्त २१ ग्रन्थों को अब भी उनके ठीक होने से स्वीकार करता हूं**' (द्र०–ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ २६०, पं० १०-१२)। ऋ० द० के इस लेख पर आर्यसमाज के उन पण्डितों को भी विचार करना चाहिये जो कानपुर के विज्ञापन में छपे सभी ग्रन्थों को ठीक नहीं समझते। ध्यान रहे कि यह लेख ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका के आरम्भ करने के दो वर्ष पीछे का है।

पृष्ठ ६७, पं० ८-९-'**अब दो सौ मनुष्यों से अधिक संख्या बढ़ाने की भी शक्ति नहीं**'—प्रस्तुत शास्त्रार्थ के लिये ११ अगस्त सन् १८७८ के दिन कर्नल मानसल और कप्तान स्टुअर्ट (रुड़की छावनी) के समक्ष जो नियम निश्चित हुए थे, उन में दूसरा नियम था—"दोनों पक्षों के मनुष्य चार सौ से अधिक न होंगे"(द्र०–ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या १६०, भाग १, पृष्ठ २४९-२५०)। इस प्रकार एक एक पक्ष के दो दो सौ मनुष्यों की स्वीकृति है। मौ० मुहम्मद कासिम ने जो आक्षेप किया है उसके सम्बन्ध में ऋ० द० के किसी पत्र में तो उल्लेख नहीं है, परन्तु ऋ० द० ने पूर्ण संख्या १६३ के पत्र में (भाग १) पृष्ठ २५९, पं० १४ तथा पृष्ठ २६१, पं० १३ में पत्र के साथ जिस **परिशिष्ट** को भेजने का उल्लेख किया है, सम्भवतः उसमें 'दोनों ओर के २०० से अधिक मनुष्य न होने' का उल्लेख किया होगा। यह परिशिष्ट हमें प्राप्त नहीं हुआ।

पृष्ठ ७० पं० २२-२४—'**मैजिस्ट्रेट साहब की सेवा में एक प्रार्थना पत्र······दिया**'—इसे तृतीय परिशिष्ट में देखें।

पृष्ठ ७०, पं०२४—'**आज कर्नल साहब की सेवा में एक प्रार्थना पत्र ······दिया**—इसे तृतीय परिशिष्ट में देखें।

पृष्ठ ७१, पं० २—'**हुक्म की प्रतिलिपि**'—इसे तृतीय परिशिष्ट में देखें।

पृष्ठ ७१, पं० २७—हस्ताक्षर के सामने '**१८ अगस्त सन् १८७८**' पाठ मुद्रण में छूट गया है, उसे यथास्थान जोड़ लें।

पृष्ठ ७२, पं० १६—**दो सौ क्या आप के छप्पर पर बैठेंगे**—जिस स्थान पर ऋ० द० ठहरे हुए थे, उस स्थान में २५-३० मनुष्य आ सकते थे। उसी की ओर संकेत करके यह पंक्ति लिखी गई है। ऋ० द० ने अधिक से अधिक २०० मनुष्यों की उपस्थिति पर बल दिया था। द्र०-पृष्ठ ७५२ पर मुद्रित 'पृष्ठ ६७, पं० ८-९' की टिप्पणी।

पृष्ठ ८४, पं० १९–'**२५ अगस्त**'–यहां '**२५ अक्तूबर**' होना चाहिये।

पृष्ठ ८४, पं० २४–'**पूर्ण संख्या २३९ का पत्र**' इसके स्थान में 'पूर्ण संख्या २३९ (भाग १, पृष्ठ २९२) का पत्र' इस प्रकार पाठ बनावें।

पृष्ठ ८६, पं० १५–'**१९ नवम्बर १२ बजे**' इसके स्थान में '**१९ दिसम्बर [१८७८] १२ बजे**' इस प्रकार शोधें।

पृष्ठ ८७, पं० २३–'**ऋ० द० के जनवरी**' के स्थान में '**ऋ० द० के ७ जनवरी**' इस प्रकार पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ ९१ पर छपा **पूर्ण संख्या १२६** का पत्र **पूर्ण संख्या १२७ के आगे** छपना चाहिये।

पृष्ठ ९२, पं० १३–**क्या कुरान नागरी में तैयार हो गया है?** इसके लिए ऋ० द० का पूर्ण संख्या ३१० का पत्र तथा भाग १, पृष्ठ ३४३ की टिप्पणी २ देखें। इसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये हमारा 'ऋ० द० सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास' का १२वां अध्याय भी देखें।

पृष्ठ ११०, पं० १२-१३–'**एक इश्तहार दिया**'–यह इश्तहार हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

पृष्ठ ११४, पं० १४–'**श्री स्वामीजी के**' पं० १७-१८–**श्री महाराज दण्डी जी** अर्थात् प्रज्ञाचक्षु श्री स्वामी विरजानन्द जी दण्डी।

पृष्ठ ११४, पं० १८–'**सप्तशती**' अर्थात् दुर्गासप्तशती।

पृष्ठ ११४, पं० २१-२२–'**कृष्ण शास्त्री से कौमुदी में षष्ठी-सप्तमी-समासविषयक पत्र द्वारा शास्त्रार्थ हुआ**'—इस शास्त्रार्थ के विषय में जो व्यक्ति अधिक जानना चाहें वे श्री पं० भीमसेन शास्त्री द्वारा लिखित

'विरजानन्द-चरित' का २१वां अनुच्छेद (पृष्ठ ६२-६७, सं० ३) देखें। यह शास्त्रार्थ न पत्र द्वारा हुआ था नाही श्री दण्डी जी और कृष्ण शास्त्री के मध्य। कृष्ण शास्त्री शास्त्रार्थ-स्थान पर नहीं आये। अतः दोनों ओर के छात्रों में प्रश्नोत्तर होते रहे। शास्त्रार्थ का विषय था—सिद्धान्तकौमुदी में **अजाद्यतष्टाप्** (अष्टा० ४।१।४) सूत्र पर लिखी गई पंक्ति—**अजाद्युक्ति-र्ङीषो ङीपश्च बाधनाय।**

पृष्ठ ११५, पं० १—**'केवट कौलुदी'** यह नाम संदिग्ध है। यहां भट्टोजी-विरचित 'सिद्धान्तकौमुदी' से अभिप्राय है। पं० लेखरामकृत जीवनचरित में यही पाठ है।

पृष्ठ ११५, पं० २—**वाक्यमीमांसा धूर्तनिराकृत**— यह ग्रन्थ श्री स्वामी विरजानन्द जी ने सं० १६१६ में लिखा था। यह नागेशभट्टकृत लघुशब्देन्दुशेखर पर खण्डनरूप ग्रन्थ है। 'धूर्तनिराकृत' के स्थान में **धूर्तनिराकृति** पाठ होना चाहिये। यह वाक्यमीमांसा का विशेषण है[1]।

पृष्ठ ११६, पं० १०—**'सूत्रादि········ दस बैठती हैं'**—यहां कौन से १० ग्रन्थ पत्र-लेखक को अभिप्रेत हैं, यह हम नहीं जानते। ऋग्वेदी जिन १० ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१. संहिता, २. पदपाठ, ३. क्रमपाठ, ४. ऐतरेय ब्राह्मण, ५. ऐतरेय आरण्यक, ६. आश्वलायन श्रौतसूत्र, ७. आश्वलायन गृह्यसूत्र, ८. अष्टाध्यायी, ९. निरुक्त निघण्टु, १०. वेदाङ्ग ज्योतिष।

पृष्ठ ११६, पं० ३०—**'मौजा चांदापुर की सभा में'** यह संकेत १९-२० मार्च सन् १८७७ में मुन्शी प्यारेलाल जी के प्रयत्न से सम्पन्न मेला चांदापुर की ओर है।

पृष्ठ १२०, पं० ११—**'विज्ञापन'** यहां **'विज्ञापन-सूचना'** पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ १२२, पं० १६, २२ **'शुकदेवप्रसाद'** के स्थान में 'सुखदेवप्रसाद' शुद्ध करें। ये नसीराबाद के थे। 'शुकदेवप्रसाद' अजमेर के मेयो कालेज के पण्डित थे। नाम साम्य से यहां अशुद्धि हुई है। इसी प्रकार भाग २ में जिन व्यक्तियों को ऋ० द० ने पत्र लिखे, उनकी सूची पृष्ठ ४३ में शुकदेवप्रसाद नाम के आगे छपी पूर्ण संख्या २६८ तथा ८९२ की पत्र-सूचनाएं

---

१. द्र०—'वाक्यमीमांसा' के प्रारम्भिक श्लोक—'तत् साधय येनाहं कुर्यां धूर्तनिराकृतिम्।'

नसीराबाद के पं० सुखदेवप्रसाद के पत्र सम्बन्धी है और पूर्ण संख्या ३८२ की पत्र-सूचना अजमेर के पं० शुकदेव के पत्र की है। पाठक इस अशुद्धि को भी शुद्ध कर लें।

पृष्ठ १२३, पं० १४-१५–**'अष्टाध्यायी बहुत शीघ्र छपनेवाली है**–यहां 'अष्टाध्यायी' से 'अष्टाध्यायीभाष्य' अभिप्रेत है। ऋ० द० ने २४ अप्रैल १८७९ को दानापुर के माधोलाल को जो पूर्ण संख्या ३१० का पत्र लिखा था, उसमें लिखा था—'अष्टाध्यायी के अभी तक पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं हुए। इसके ४ अध्याय अभी तैयार हुए हैं' (ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ३४३, पं २२-२३)।

पृष्ठ १२७, पं० १३—**'मेरा नाणा'**–'नाणा' गुजराती भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है—रुपया।

पृष्ठ १२९, पूर्ण संख्या १६०, पं० ७-१२—यह पत्र अस्थान में जुड़ गया है। यह ऋ० द० के सं० १९३३ के काशी-निवास काल (ज्ये० शु० ४ से भा० कृ० १०) का है। अतः इसे पूर्ण संख्या ३४ (पृष्ठ १५) के आगे जोड़ें। इसी प्रकार इस के उत्तर में लिखे गये ऋ० द० के पूर्ण संख्या ३९४ भाग १, पृष्ठ ४२७ पर छपे पत्र को भी भाग १ में पूर्ण संख्या ६८, पृष्ठ ८५, पं० १८ के आगे पूर्ण संख्या ६९ से पूर्व जोड़ें।

हमने इन पत्रों को सं० १९३६ के काशी-निवास काल का समझकर इन्हें सं० १९३६ के क्रम में जोड़ा था। वस्तुतः ये सं० १९३३ के हैं।

पृष्ठ १२९, पं० २१—**'पत्र के अन्त में'** के स्थान में 'पत्र के नीचे टि० ४ में' इस प्रकार पाठ शोधें।

पृष्ठ १५३, पं० १३-१५–**'यह आधा वाक्य ही अपना उपयोगी समझ कर क्यों लिखा क्या इसलिये कि शेषार्ध वादी का उपयोगी है?**

उक्त प्रश्न करके राजा शिवप्रसाद ने आगे (पृष्ठ १५३, पं० १५-१९ तक) उपनिषद् का पूरा वाक्य उद्धृत किया है। ऋ० द० ने उसमें से '०ऽथर्वाङ्गिरसः' पर्यन्त भाग उद्धृत किया है शेष भाग उद्धृत नहीं किया। इसी पर राजा जी की आपत्ति है। वे समझते हैं कि अगले वाक्य में कहे गये इतिहास पुराण आदि भी महाभूत=परमेश्वर से निःसृत हैं।

मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद माननेवाले शङ्कराचार्य ने बृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में·····**अथर्वाङ्गिरसः** के लिये लिखा है **चतुर्विधं मन्त्रजातम्** अर्थात् ऋक् यजुः साम अथर्व चार प्रकार के मन्त्रात्मक वेद।

तत्पश्चात् पठित इतिहास पुराण आदि से तत्तद्विषय-विशिष्ट ब्राह्मण ग्रन्थों के वाक्यों का उल्लेख किया है। ऋषि दयानन्द अगले इतिहास पुराण आदि शब्दों से पूर्व कथित मन्त्रात्मक वेद के ही तत्तद्-विषयक-भाषा-निबद्ध मन्त्रों का निर्देश मानते हैं। महर्षि यास्क ने भी निरुक्त ४।६ में कहा है– **तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं च भवति।** अर्थात् उस त्रित के सूक्त में ब्रह्म= वेद इतिहास से मिश्रित, ऋक्=स्तुति से मिश्रित और गाथा=विशेषरूप से गाने योग्य स्तुति से मिश्रित है। अर्थात् उस सूक्त में तीनों प्रकार के मन्त्र हैं। **त्रितः कूपेऽवहितः**—गर्भरूप अन्ध कूप =शरीर में पड़ा हुआ=विद्यमान मेधावी विचारता है..........। यह इतिहास मिश्रित मन्त्र है। इसी प्रकार अन्य के उदाहरण इसी सूक्त में विद्यमान हैं।

उपनिषद् में कहे गये इतिहास पुराण आदि तत्तत्प्रकार के मन्त्र हैं। जिन मन्त्रों में भूतकाल की क्रिया का निर्देश करके किसी तत्त्व की विवेचना की है वह इतिहास का रूप मन्त्र है। यथा— **त्रितः कूपेऽवहितः** (ऋ० १।१०५।१७), **हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे** (ऋ० १०।१२१।१) इत्यादि इतिहास-मन्त्र हैं। **नासदासीन्नोसदासीत्तदानीम्** (ऋ० १०।१२९।१) **ऋतं च सत्यं च** (ऋ० १०।१९०।१) इत्यादि भाववृत्त=जगत् की उत्पत्ति विषयक पुराण-मन्त्र है। इसी प्रकार बृहदारण्यक में उक्त सभी विद्याओं से युक्त तत्तद् विषयक मन्त्र ही अभिप्रेत हैं। सायणाचार्य ने तैत्तिरीय आरण्यक ८।२१ की व्याख्या में लिखा है—**ब्राह्मणं चाष्टविधम्** अर्थात् ब्राह्मण आठ प्रकार का है। यह लिखकर बृहदारण्यक उपनिषद् का उक्त वचन पढ़ा है। आचार्य शङ्कर तथा उनके अनुयायियों के मत में ८ प्रकार का ब्राह्मण तो महाभूत निःश्वसित स्वीकार कर लिया गया, परन्तु ब्राह्मण का मुख्य लक्षण '**विनियोजकं ब्राह्मणं भवति**' जो मन्त्र को किसी कर्म में लगानेवाला '**उरु प्रथस्वेति पुरोडाशं प्रथयति**' सदृश ब्राह्मण भाग है वह अष्टविध प्रकार के अन्तर्गत न आने से ब्रह्मनिःश्वसित कैसे माना जायेगा। क्योंकि शङ्कराचार्य ने ऋग्वेदादि शब्दों से केवल मन्त्रों का ही निर्देश स्वीकार किया है। ऋ० द० के मत में ऋग्वेदादि शब्दों से सामान्यरूप से मन्त्र-संहिता मात्र का निर्देश करके उसी के अवयवभूत इतिहास पुराण आदि से ८ प्रकार के विशिष्ट मन्त्रों का ब्राह्मणवसिष्ठ न्याय से पृथक् उल्लेख किया है। जैसे **ब्राह्मणा आयाता वसिष्ठोऽप्यायातः** में वसिष्ठ के ब्राह्मणों के अन्तर्गत होने पर भी उसका पृथक् निर्देश होता है।

मन्त्र-संहिता ही वेद हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की वेदसंज्ञा केवल कृष्ण यजुर्वेद के ही श्रौतसूत्रों में उपलब्ध होती है और वह भी उनके परिभाषा प्रकरण में। अतः जैसे पाणिनीय व्याकरण की गुण वृद्धि संज्ञायें सर्वतन्त्र-सिद्ध नहीं हैं, केवल पाणिनीय शास्त्र की प्रवृत्ति के लिये कल्पित होने पर भी उस शास्त्र के परिज्ञान के लिये आवश्यक हैं, उसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रों में उक्त ब्राह्मण की वेद संज्ञा का व्यवहार उसके श्रौत-सूत्रादि कर्मकाण्डीय ग्रन्थों तक ही सीमित है, सर्वतन्त्रसिद्ध नहीं है। इस की विशद विवेचना के लिये हमारे "**वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**" ग्रन्थ में "**वेद-संज्ञा-मीमांसा**" निबन्ध देखें। यह संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में छपा है।

पृष्ठ १५५, पूर्ण संख्या १६८ का पत्र कहां से लेकर संकलित किया। इस विषय की टिप्पणी छूट गई है। 'यह पत्र म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १, पृष्ठ ३६५-३६६ तक छपा है' ऐसी टिप्पणी पं० २० के 'तत्सत्' पद पर चिह्न करके जोड़ें।

पृष्ठ १८८, पं० २३-२४—**हर एक जर्मन यूनिवर्सिटी में संस्कृत पढ़ाई जाती है**–यह आज से लगभग १०२ वर्ष पूर्व की जर्मनी में संस्कृताध्ययन-अध्यापन की स्थिति थी। भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् यहां संस्कृत भाषा की उन्नति तो दूर रही उसका अध्ययन निरन्तर गिरता जाता है। यह परम खेद की बात है। आर्यसमाज भी स्कूल कालिज तथा अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोलने में लगा हुआ है। ऋषि दयानन्द जितना संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे, आर्यसमाज उसके विपरीत अंग्रेजी भाषा के प्रचार-प्रसार में पूरी शक्ति से जुटा हुआ है। ऐसी अवस्था में विचारणीय है कि दयानन्द का स्वप्न(संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार) कौन पूरा करेगा?

पृष्ठ १९७, पं० १७—'**मेघा बैठेगा**' यहां 'मैंढक बैठेगा' पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ २०८, पं० १—'**का पत्र**' इस पत्र का सारांश आगे पूर्ण संख्या संख्या २३५ पृष्ठ ३२६ पर छापा है।

पृष्ठ २२०, पं० २९—'**संख्या २९, पृष्ठ १४५**' यहां 'संख्या १८२, पृष्ठ १६६' शुद्ध करलें।

पृष्ठ २७७, पं० २६–'**परिशिष्ट में**' यहां '**परिशिष्ट ३ में**' इस प्रकार शोधें।

पृष्ठ २६४, पं० ३०–'**अङ्क १ के पृष्ठ**' इसके स्थान में 'अङ्क १ (सन् १८८६) के पृष्ठ' पाठ होना चाहिये।

पृष्ठ ३००, पं० ५–'**भेजना जरूरी नहीं है**' यह बात ऋ० द० ने ६ [अगस्त या सितम्बर] १८८० को लिखे पत्र में लिखी थी। ऋ० द० जो भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल सिखाने के लिये अत्यन्त लालायित और प्रयत्नशील थे, उन्हें यह सम्मति क्या ला० मूलराज एम० ए० आदि ने दी थी? इस सम्बन्ध में ऋ० द० ला० मूलराज से ही पत्रव्यवहार करते रहे हैं। अत: यह रहस्य विचारणीय है।

पृष्ठ ३१६, पं० १२—'**छात्रान्तर्गत गोपालराव हरि देशमुख के**' महाराष्ट्र में सर्व-मान्य लोकहितवादी गोपालराव हरि देशमुख का अपने को 'छात्रान्तर्गत' लिखना बताता है कि उनके हृदय में ऋषि दयानन्द के प्रति कितनी प्रतिष्ठा थी। ऋ० द० के निधन के पश्चात् फरवरी १८८४ के 'लोकहितवादी' पत्रिका में आपने ऋ० द० का जो संक्षिप्त चरित्र छापा था वह भी इस बात का पोषक है। हमने इसका हिन्दी अनुवाद 'ऋ० द० और आ० स० से सम्बद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण अभिलेख' नामक संग्रह में छपवाया है। यह रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्राप्त हो सकता है।

पृष्ठ ३२०, पं० ७-८—'**आर्यपत्रिका में छापेंगे**'। 'आर्यप्रकाश' नाम्नी पत्रिका बम्बई आर्यसमाज से प्रकाशित होती थी। इसको प्रकाशित करने की व्यवस्था बम्बई आर्यसमाज के प्राचीन नियमों में १२वें नियम में की है। वहां इसका नाम 'आर्य-प्रकाश' लिखा है (द्र०–ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ १०११)। सम्भवत: पं० गोपालराव का भी उसी की ओर संकेत हो।

पृष्ठ ३२५, पं० ५—'**प्राप्त्यप्राप्ति ··· भवभिस्सा०**' यहां '**प्राप्त्य-प्राप्ति ····· भवद्भिस्सा०**' इस प्रकार पाठ शुद्ध करें।

पृष्ठ ३२८, पं० ७—'**संस्कृते न पत्रं**' यहां 'न' पद व्यर्थ है अथवा 'संस्कृतेन' ऐसा पाठ होना चाहिये, परन्तु संस्कृत भाषा की दृष्टि से 'संस्कृतेन' प्रयोग अयुक्त है।

पृष्ठ ३२८, पं० १५ तथा पृष्ठ ३२६, पं० १ में 'नामिक' की संस्कृत

में रचना का उल्लेख है। ऐसा ही उल्लेख पं० ज्वालादत्त के अगले पत्र में भी मिलता है। यथा—पृष्ठ ३३०।

पृष्ठ ३३३, पं० ३—'**और भाष्य यह चार**'—तथा आगे पं० २६-२७ में भाष्य के पश्चात् टब्बा का भी उल्लेख है। उसको मिलाकर पांच अवयव होते हैं।

पृष्ठ ३३३, पं० १४—"**वृहद्वाचना**' यह अशुद्ध है। इस का शुद्ध पाठ '**वृहद्वाचना**' होगा।

पृष्ठ ३३३, पं० १५—'**मध्यवाचना**' इसका शुद्ध पाठ '**महानिशीथ-मध्यमवाचना**' होना चाहिये।

पृष्ठ ३३५, पं० ४—'**षर्युषणा**' के स्थान में '**पर्युषणा**' पढ़ें।

पृष्ठ ३३७, पं० ५–'**सामानभाषा**' इसके स्थान में '**समानभाषा**' पढ़ें।

पृष्ठ ३४१, पं० २५–'**२ माघ**' यहां '२. १८८१ होना चाहिये। माघ' पाठ बनावें। **द्र०–आगे विशेष।**

पृष्ठ ३४२, पं० १५—'········ **जालमसिंह**' इसके विषय में ऋ० द० का पूर्ण संख्या ५४२, का पत्र (भाग १, पृष्ठ ५८५) देखें। इनका स्वामी जी से मिलने का प्रयोजन ऋ० द० के पूर्ण संख्या ५४३, के पत्र (भाग १, पृष्ठ ५८५) में वर्णित है।

पृष्ठ ३४३, पं० १४—'**अहमदाबाद के नवीन रास्ते**'—बम्बई से आगरा जाने का बड़ोदा रतलाम मथुरा होकर बड़ी लाइन का जो मार्ग है वह मार्ग बहुत वर्ष पूर्व चालू हो चुका था। अहमदाबाद होकर आगरा पहुंचने का छोटी लाइन का पूरा मार्ग पत्र लिखने से कुछ समय पूर्व ही चालू हुआ था।

पृष्ठ ३४३, पं० १५—'**आपके पास आपहुंचेंगे**' यहां '**आपके पास आगरा पहुंचेंगे**' पाठ होना चाहिये। लेखक दोष से 'आ' के आगे 'गरा' छूट गया। आगरा में ऋ० द० २७ नवम्बर १८८० से १० मार्च १८८१ तक रहे थे।

पृष्ठ ३६८, पं० २—'**सोसैटी**'। शुद्ध पाठ '**सोसाइटी**' होना चाहिये।

पृष्ठ ३७०, पं० १-२—'**एक पत्र मुंशी लक्ष्मणस्वरूप ने भी भेजा है**'-यह पत्र हमें प्राप्त नहीं हुआ। मुंशी लक्ष्मणस्वरूप का एक पत्र आगे पृष्ठ

३८६ पर छपा है। वह अप्रैल मास का लिखा हुआ है। यहां संकेतित ६ जनवरी के आस-पास का होना चाहिये।

पृष्ठ ३७०, पं० ५-६ पर शरीफस्वालह मुहम्मदी के जिस पुस्तकालय का उल्लेख है, वह सम्प्रति है वा नहीं इसका भी हमें ज्ञान नहीं। आगे यहीं विद्यमान **वेद-स्वरविधान** पुस्तक का निर्देश है। इसका भी हमें ज्ञान नहीं। यह मुद्रित है वा अमुद्रित, यह भी हम नहीं जानते।

पृष्ठ ३७१, पं० ९-१०—'**प्रयाग में यन्त्रालय १ अप्रैल सन् १८८१ को आया है**' इस पर टिप्पणी—वैदिक यन्त्रालय की सन् १८८१, ८२, ८३ की जो सम्मिलित रिपोर्ट छपी है, उसमें लिखा है—'यन्त्रालय चैत्र सु० १ सं० १९३८ (ता० ३०-३-८१) को प्रयाग में लाया गया।'

वैदिक यन्त्रालय के प्रयाग जाने के सम्बन्ध में ऋग्वेदभाष्य के सं० १९३७ चैत्र के छपे (४०-४१ सम्मिलित) अङ्क के टाइटल पेज ३ पर एक विज्ञापन छपा है। वह इस प्रकार है—

सब सज्जनों को विदित हो कि श्रीमत स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की आज्ञानुसार "वैदिक यन्त्रालय" जो बनारस में है। १ अप्रैल १८८१ से प्रयाग महल्ला शाहगंज में उठ जायेगा और वेदभाष्य वा अन्य पुस्तकों के छपने आदि का काम जिस प्रबन्ध से यहां है वहां भी रहेगा अर्थात् जैसे वेदभाष्य आदि पुस्तक छपकर यहां से १ तारीख को भेजी जाती है वैसे ही वहां से भेजी जाया करेगी इसलिये जो महाशय इस वैदिक यन्त्रालय में पत्र-व्यवहार आदि चाहें, निम्नलिखखित पते से करें।।

बनारस ता० २७ मार्च सन् १८८१ ई०	लाला शादीराम प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय, शाहगंज प्रयाग

पृष्ठ ३७४, पं० ५-६—'**मरुस्थलेश्वर**' अर्थात् जोधपुरनरेश।

पृष्ठ ३९३ पर पूर्ण संख्या ३१४ से पूर्व आगे पृष्ठ संख्या ५१४ पर छपा पूर्ण सं० ४२३ का पत्र छपना चाहिये था। भूल से आगे छपा।

पृष्ठ ४०१, पं० १४—'**पं० ब्रजमोहन**'—ये पं० लक्ष्मीदत्त के पुत्र और ऋ० द० के सहपाठी थे। ऐसी टिप्पणी श्री मामराज जी ने म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १ की अपनी पुस्तक में पृष्ठ ३९१ के मार्जन (हाशिये) पर दी है। श्री मामराज जी ने अपनी इस पुस्तक पर जितनी टिप्पणियां दी हैं, उन्हें हम परिशिष्ट ४ में दे रहे हैं।

पृष्ठ ४१२, पं० ८-९—**'गोकरुणानिधि के विषय में'** अर्थात् गोरक्षा के विषय में।

पृष्ठ ४१३, पं० ३—**वेदान्तप्रकाश'** के स्थान में 'वेदाङ्गप्रकाश' इस प्रकार शुद्ध करें।

पृष्ठ ४१६, पं० १८—'॥ श्रीरामजी ॥' पर टिप्पणी संख्या २ देना तथा नीचे टिप्पणी छूट गई है। उसे टि०सं० १ के बाद इस प्रकार जोड़ें–'यह पत्र पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग २, पृष्ठ ४४ पर छपा है।'

पृष्ठ ४१७, पं० १६—**'सन् १८८२'** के आगे बढ़ावें–यह पत्र ऋ० द० को १४ जुलाई १८८२ को जावरा में मिला था। द्र०–पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ५७८।

पृष्ठ ४१८, पं० ७ के नीचे निम्न पाठ जोड़ें—

"१९-७-८२ [मन्त्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद]"

पृष्ठ ४१८, पं० २४—**'पृष्ठ ३६६'** इसके स्थान में **'पृष्ठ ३६५'** इस प्रकार शुद्ध करें।

पृष्ठ ४२७, पं० ९-१०—**'१५ पेश्तर'** इसके स्थान में **'१५ रोज पेश्तर'** शोधें।

पृष्ठ ४३८, पं० ११—**'स्थान ने जा'** इसके स्थान में 'स्थान में जा' इस प्रकार पढ़ें।

पृष्ठ ४३९, पं० ८—**'उसने रसीद भेजी और मेरे नाम से'**—इस प्रकार शुद्ध करें—**'उसने न रसीद भेजी और न मेरे नाम से'**।

पृष्ठ ४४०, पं० १—**'रहावाड़ा'** के स्थान में **'रजवाड़ा'** शोधें।

पृष्ठ ४४३, पं० २५–**'पृष्ठ ६६'** के स्थान में **'पृष्ठ ६३'** होना चाहिये।

पृष्ठ ४५४, पं० २३—**'ऋ० द० के पूर्ण संख्या ७३९'** इस के स्थान में **'ऋ० द० के पौ० ब० १२ सं० १९३९ (६ जनवरी ८३) के पूर्ण संख्या ७३९'** इस प्रकार शुद्ध करें।

पृष्ठ ४६५, पं० २—**'षड्दर्शनों का याथातथ्य भाषान्तर'** इस पर टिप्पणी देवें—**'महाराणा सज्जनसिंह ने स्वामी जी से कहा कि आप छः**

दर्शनों की टीका छपवा दें। इसके लिये मैं बीस हजार रुपये तक व्यय करूंगा'। द्र०–पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ६०१।

पृष्ठ ४८३, पं० १४—'**अगले पत्र**' अर्थात् 'पिछले पत्र'। यह प्रयोग राजस्थानी भाषानुसार है। द्र०–इसी पृष्ठ की टि० ५।

पृष्ठ ४८३, पं० २५ पर छपी टिप्पणी संख्या ४ की है, अस्थान में छप गई है। इस कारण अगली टि० सं० ३, ४ को २, ३ बनाकर इसे आगे ले जावें।

पृष्ठ ५०५, पं० ६—'**पं० महादेव का पत्र**' यह पत्र पूर्ण संख्या ६११ (भाग ४) पृष्ठ ७४२ पर छपा है। उस पर तिथि तारीख न होने से वहां छप गया। वस्तुतः उसे प्रस्तुत पूर्ण संख्या ४१२ के पत्र से पूर्व छापना चाहिये था।

पृष्ठ ५०६, पं० १०—'**रामानन्द को**' इस के स्थान '**रामनाथ को**' होना चाहिये। रामनाथ के वै० यं० से लौट आने का उल्लेख आगे पृष्ठ ५१०, पं० ११ में है।

पृष्ठ ५१४ पर छपा पूर्ण संख्या ४२३ का पत्र पूर्ण संख्या ४२६, पृष्ठ ५१५ से पूर्व छपना चाहिये। पृष्ठ ५१४ की टि० ३ में सं० १६४० की जगह सं० १६३६ होना चाहिये।

पृष्ठ ५४०, पं० १०—'**जरूर ४ लिखवावें**'—'जैसे गांव २ फिरता है' को 'गांव गांव फिरता है' पढ़ा जाता है, उसी प्रकार यहां ४ संख्या का प्रयोजन जरूर शब्द को चार बार लिखना वा बोलना है—जरूर जरूर जरूर जरूर लिखवावें'। विशेष बल देने के लिये चार बार लिखा है। यह अनेक बार बोलने की प्रवृत्ति संस्कृत भाषा में भी है। महाभाष्य ८।१।१२ में कहा है 'जितने शब्दों से वह अर्थ जाना जाये उतने बोलने चाहियें। यथा—**अहिरहिरहिः बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व**।

पृष्ठ ५४०, पं० ११-१२–'**१ विनय पत्र साहपुर ········कल्ल दिई**'—यह पत्र हमें नहीं मिला।

पृष्ठ ५४३, पं० १२—'**खारची कु गये**' इस पर टिप्पणी—दिल्ली अहमदाबाद रेलमार्ग पर '**मारवाड़ जंक्शन**' नाम का एक स्टेशन है। इसी का पुराना नाम **खारची** था

पृष्ठ ५४६, पं० २—'**पं० सुखदेव और पं० दामोदर जी अजमेर में हैं**–

नसीराबाद (अजमेर) के पं० सुखदेवप्रसाद जी का ऋ० द० के नाम पत्र की पत्र-सूचना इस संग्रह में छपी है। अजमेर के पं० शुकदेवप्रसाद जी के भी ऋ० द० के नाम कई पत्र इस संग्रह में संगृहीत हैं। उपर्युक्त उद्धरण से सन्देह होता है कि पं० सुखदेवप्रसाद और पं० शुकदेवप्रसाद एक व्यक्ति के ही नाम हैं अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के। दोनों ही अध्यापक थे। शुकदेवप्रसाद का सरलीकृत नाम सुकदेवप्रसाद[1]=सुखदेवप्रसाद हो सकता है। हमारे विचार में इस पत्र में स्मृत पं० सुखदेव उक्त दोनों व्यक्तियों से भिन्न है। वेसा इसी पृष्ठ की पं० १६-२० से विदित होता है।

पृष्ठ ५५८, पं० ८—'**स्वामी आलारामजी**'—इनका एक पत्र चौथे भाग में पूर्ण संख्या ६१५, पृष्ठ ७४५-७४६ पर छपा है।

पृष्ठ ५७८, पं० १८-१९—'**नमस्ते ३ प्रकट हो**' अर्थात् 'नमस्ते नमस्ते नमस्ते प्रकट हो'।

पृष्ठ ५७६, पं० २२ की टि० २ इस प्रकार शोधें—'ठाडी बरखा अर्थात् खड़ी मूसलाधार वर्षा'।

पृष्ठ ५८२, पं० १२-१३–'**समाज का प्रथम वर्ष का उत्साह है**' उत्साह अर्थात् उत्सव। ऋ० द० ने भी सं० १९३१ चैत्र शुद्ध ६ के पत्र में उत्सव के अर्थ में **उत्साह** शब्द का प्रयोग किया है। द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ७५, पं० ३।

पृष्ठ ५८७, पं० १५–'१३-७-८२' के स्थान में '१३-७-८३' इस प्रकार शोधें। हमने यह पत्र श्री हरबिलास सारडा कृत 'वर्क्स आफ महर्षि दयानन्द' से लेकर छापा है। वहां भूल से '८२' छपा है अथवा मूल पत्र पर ही '८२' है, हमें ज्ञात नहीं। म० मुंशीराम जी ने 'आदिम सत्यार्थ-प्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त' में इस पत्र का थोड़ा अंश छापा है। उसमें ता० '१३-७-८३' ही है। सत्यार्थप्रकाश के मुद्रण सम्बन्धी पत्रों के अनुसार यह पत्र १३-७-८३ का ही होना चाहिये।

पृष्ठ ५८८, पं० ८—'**प्रथम जब पुस्तक लिखा गया था**' यहां प्रेस कापी के लिखने का तात्पर्य है।

पृष्ठ ५८८, पं० ६–'**शोधते समय**' अर्थात् प्रेस कापी को शोधते समय।

---

[1] सुकदेव तथा सुखदेवप्रसाद नाम पूर्ण संख्या ५६३, भाग ४, पृष्ठ ६७६, पं० १४-१५ में आये हैं।

[इस विषय में 'वेदभाष्य और सत्यार्थ प्रकाश में मांस भक्षण' शीर्षक द्वितीय परिशिष्ट देखें।]

पृष्ठ ६०३, पं० ७—**दो घड़ियें हमारे पास आई थीं**—पुरोहित उदयलाल को एक घड़ी पं० गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र लक्ष्मण गोपाल देशमुख ने भेजी थी और दूसरी सेवकलाल कृष्णदास ने। द्र०—आगे पूर्ण संख्या ५२१ का पत्र, पृष्ठ ६११ पं० १०-१५।

पृष्ठ ६०७, पं० ५—'**सांमलदास जी कवी**' अर्थात् कविराज श्यामलदास जी। सांमलदास, सांवलदास (पृष्ठ ६०९, पं० ४ तथा ६१०, पं० ५) ये श्यामलदास के राजस्थानी बोली के उच्चारण हैं। इसी पृष्ठ की टि० २ में 'नाम लिखने में भूल हुई।' अंश निकाल देवें।

पृष्ठ ६०८, पं० ११—'**दो किताबें ज्यो आपने भेजी थी**'—कुरान और इंजील के खण्डन में ये लिखी गईं थी। द्र०—इसी भाग में पूर्व पृष्ठ ६०२, पं० २६ तथा ऋ० द० के पत्र पूर्ण संख्या ८५८, ८५९, ८७०, भाग २, पृष्ठ ८७७, ८८६।

पृष्ठ ६०९, पं० ३—'**जयकर्ण**' तथा पं० १६—'**उज्ज्वल जयकर्ण**' यहां दोनों नामों से एक ही व्यक्ति स्मृत है।

पृष्ठ ६१०, पं० २६-२८—पर छपा मन्त्र का शोधा हुआ पाठ ऋ० द० के पूर्ण संख्या ८७५ (भाग २, पृष्ठ ८९२) के आगे छपना चाहिये। २८वीं पंक्ति में **तृतीये** के स्थान में **द्वादशे** चाहिये, जिसे हमने [ ] बढ़ाया है। तीसरे अध्याय में यह मन्त्र नहीं है।

पृष्ठ ६१२, पं० ९—'**हमारे तीर्थरूप का आना**' अर्थात् पिता गोपाल राव हरि देशमुख का आना।

पृष्ठ ६१४, पं० २०—'**दो तीन जगह के अक्षर तो करा लिये जावेंगे**' यहां अक्षर से अभिप्राय गोरक्षा सम्बन्धी हस्ताक्षर से है।

पृष्ठ ६२४, पं० १५—'**पं० शिवकुमार ने**' ये पं० शिवकुमार काशी के प्रसिद्ध पं० बालशास्त्री के शिष्य थे। इनके पाण्डित्य की धाक भी काशी के पण्डितों पर अभी तक है। ऋ० द० ने काशी में जो संस्कृत पाठशाला खोली थी उसमें २५ रु० मासिक पर पढ़ाते थे। द्र०—पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८१३ की अन्तिम पंक्ति।

पृष्ठ ६३३, पं० ६—**श्री साहेपुरा सुजतकरण**—इसे 'श्री साहेपुरा सुजतकरण' इस प्रकार पढ़ें।

पृष्ठ ६३६, पं० २३-२४—**आप छः अङ्गों की व्याख्या तो करते नहीं**—ऋ० द० ने **वेदाङ्गप्रकाश** ग्रन्थमाला का नाम रखा था। उससे प्रतीत होता है कि वे व्याकरण के पश्चात् अन्य वेदाङ्गों की व्याख्या भी छापना चाहते थे। पाणिनीय शिक्षा को वर्णोच्चारण शिक्षा के नाम से प्रथम छापना और निघण्टु को व्याकरण के पश्चात् १४वीं संख्या पर छापना भी उक्त अभिप्राय को व्यक्त करता है।

पृष्ठ ६४०, पं० २० तथा पृष्ठ ६४१, पं० १-२—'(**विश्वा रूपाणि**……… **यह देश के बनियों की गायत्री है**'—इस पर टिप्पणी—पारस्कर गृह्यसूत्र के उपनयन प्रकरण में **जगतीं वैश्यस्य** (पा० गृ० १।३।६) सूत्र की व्याख्या में कर्क आदि लिखते हैं—**विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते इति**। इस प्रकार उक्त मन्त्र बनियों की गायत्री (=गायत्री स्थानीय) मन्त्र बन गया।

पृष्ठ ६४४, पं० ७—'**तथा घर्म से**' घर्म=घाम=धूप से।

पृष्ठ ६४५, पं० ७-८—'**अर्थात् इनके समय ही**' यहां 'इनके' से 'लार्ड-रिपन' अभिप्रेत है। द्र०-पूर्ण संख्या ५३१, भाग ३, पृष्ठ ६२६, पं० २०-२१।

पृष्ठ ६४६, पं० १७—'**सत्यार्थप्रकाश के शब्द बदलने की आप ने आज्ञा दी**'—इसके लिये ऋ० द० का पूर्ण संख्या ८६०, भाग २, पृष्ठ ६०६, पं० २-३ द्रष्टव्य हैं।

पृष्ठ ६४६, पं० २०-२४—'**कापी में गड़बड़ आती है। असम्बद्ध भाषा बहुत आती है………जो आप की कापी के अनुकूल छाप दिया जाता तो ग्रन्थ बहुत अशुद्ध होता।**

विशेष—उक्त उल्लेख सत्यार्थप्रकाश के विषय में है। इस पत्र से स्पष्ट है कि मुंशी समर्थदान ने ऋषि द्वारा भेजी गई सत्यार्थप्रकाश की प्रेस कापी में भी पर्याप्त शोधन किया था (यही अवस्था संस्कारविधि की भी है)। ऐसी अवस्था में हस्तलेख का विशेष महत्त्व नहीं रहता। हस्तलेख का तो इस अवस्था में इतना ही महत्त्व रह जाता है कि मुद्रण काल में कोई पद वाक्य आदि छपने से रह जावे तो उसे प्रेस कापी के आधार पर

यथास्थान जोड़ दिया जाये। यह महत्त्व पाण्डुलिपि(रफकापी)का भी है। उससे प्रतिलिपि करते समय लेखक की दृष्टिदोष से कोई पद वाक्य अथवा **पंक्ति** छूट गई हो तो उसका समावेश कर लेना चाहिये। परन्तु यह वृद्धि सत्यार्थप्रकाश के ३४वें संस्करण के समय संशोधक श्री धर्मचन्द जी कोठारी को प्राप्त हुई। उससे पूर्व के संशोधकों ने मन्त्री परोपकारिणी सभा के आदेश से प्रेस कापी मिलान करके संस्कारविधि में भयङ्कर भूलें कीं। सन्धिविषय के प्रथम संस्करण का संशोधन द्वितीय संस्करण में पं० **भीमसेन ने** किया था। इस विषय की विज्ञप्ति भी उस संस्करण में छपी है। ७वें संस्करण तक दूसरे संस्करण के अनुसार छपता रहा। परन्तु सं० १९३९ के छपे ८वें संस्करण में 'मन्त्री परोपकारिणी सभा' की 'प्रथम संस्करण से मिलाकर छापो' आज्ञा से प्रथम संस्करण के द्वितीय संस्करण में निकाले गये ८ सूत्र पुनः प्रविष्ट हो गये। संशोधक ने प्रथम संस्करण के निकाले गये अप्रासङ्गिक सूत्र तो प्रविष्ट कर लिये परन्तु द्वितीय संस्करण में बढ़ाये गये ३० सूत्र रहने दिये। इस प्रकार यह संस्करण विचित्र खिचड़ी सा बन गया। ऋ० द० के ग्रन्थों के सम्पादन के लिये जहां चहुं-मुखी प्रतिभा और विद्वत्ता की अपेक्षा है वहां वर्तमानकालीन हस्तलिखित ग्रन्थों के सम्पादन-सम्बन्धी कला का ज्ञान भी परमावश्यक है।

पृष्ठ ६७७, पं० २८—'**पहली जगह नौकर हो गये**'—दामोदर शास्त्री अजमेर के मूलचन्द सोनी के मन्दिर में पढ़ाते थे। द्र०–पं० शुकदेवप्रसाद का पूर्ण संख्या ४१० का पत्र भाग ३, पृष्ठ ४९६, पं० १३-१४।

पृष्ठ ६७७, पं० २९—'**धन्नालाल का कुछ हाल मालूम नहीं**'—पं० धन्नालाल का भाग ३, पृष्ठ ५७२ पर पूर्ण संख्या ४८५, का पत्र देखें।

पृष्ठ ६८७, पं० १४—**यहां विदेशी को रखने की आज्ञा नहीं**—यहां= जयपुर या जयपुर राज्य में, विदेशी=अन्य प्रान्त वाले को।

पृष्ठ ६९०, पं० २—'**मूलत्राणे**' अर्थात् मुलतान में।

पृष्ठ ७०७, पं० १७-२१ तथा पृष्ठ ७०८, पं० १-२ में मुक्तिविषयक जिन वचनों की ओर संकेत किया है, वे इस प्रकार हैं—

वेदभाष्यभूमिका अर्थात् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (अङ्कों के रूप में छपी)—

पृष्ठ १८४—'फिर उस दुःख के अत्यन्त अभाव और परमात्मा के

नित्य योग करने से **सब दिन के लिये** परमानन्द होता है उसी सुख का नाम मोक्ष है।'

पृष्ठ १८७—'आप भी कृपा करके मुझको **सदा** अपने समीप रखिये'।

आर्याभिविनय प्रथम संस्करण, संवत् १९३२ में—

पृष्ठ १६—'जिस को प्राप्त होके पूर्णानन्द में रहते हैं फिर **वहां से कधी नहीं दुःख में गिरते**।'

पृष्ठ २३—'सो नः हमको दुर्गाणि विश्वा सम्पूर्ण दुःखों से पर्षदति पार करके **नित्य सुख** प्राप्त करो।'

पृष्ठ ४२—'सब बाधाओं से छूटकर **सर्वदा** विज्ञानवान् शुद्ध होके देश-काल वस्तु का परिच्छेदाभेदरहित सर्वगत धाम आधाररूप परमात्मा में सदा रहते हैं उस से **कधी जन्ममरणादि दुःखसागर में नहीं गिरते**'।

पृष्ठ ४३—'जिससे हम लोग निर्भय होके **सदैव** परमानन्द को भोगें।'

पृष्ठ ४४—'आप के अनुग्रह से संसार में **सदा** सुखी रहूं।

पृष्ठ ४५—'परमानन्द स्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूट के **सदैव** परमानन्द में रहता है।'

पृष्ठ ४८—'अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ती को प्राप्त होके जन्ममरण रहित अमृत स्वरूप **सदैव** रहते हैं।'

पृष्ठ ५५ (५४ चाहिये)—'जिससे हम लोगों को **सदा** आनन्द ही रहे।'

पञ्चमहायज्ञविधि (सशोधित) प्रथम संस्करण सं० १९३४ में छपी—

पृष्ठ ५६—'जो **जन्म मरणादि रोगों का नाश करनेहारा** परमात्मा वह धन्वन्तरि कहाता है।'

आर्योद्देश्यरत्नमाला प्रथम संस्करण सं० १९३४ में छपी—

संख्या २९—जिससे सब बुरे काम और जन्ममरणादि दुःखसागर से छूटकर सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त होके **सुख में ही रहना** है वह मुक्ति कहाती है।

ये हैं क्षेमकरणदास जी द्वारा संकेतित वे अंश जो मुक्ति या मोक्ष सुख की नित्यता=अपुनरावृत्ति को कहने वाले हैं। इनके अतिरिक्त भी ऋ० द० के ग्रन्थों में अन्यत्र ऐसे वचन उपलब्ध होते हैं, जिनसे मुक्ति से अपुनरा-वृत्ति संकेतित होती है। यथा—

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अङ्कोंवाला प्रथम सं० पृष्ठ १८८—'मुक्तैः प्राप्तव्यस्य मोक्षस्वरूपस्य सच्चिदानन्दादिलक्षणस्य परब्रह्मणः प्राप्त्या जीवः **सदा** सुखी भवति।'

आर्याभिविनय प्रथम सं० पृष्ठ २—'सम्पूर्ण दुःखों से छूट के परमानन्द परमात्मा के **नित्यसंग** रूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है फिर **कभी जन्ममरणादि दुःखसागर को प्राप्त नहीं होता**।'

पृष्ठ ७०६, पं० १-२— **एक कार्ड आपकी खिदमत में पेश किया था**—द्र०—पूर्व पूर्ण संख्या ५६५, पृष्ठ ६८६ पर छपा पत्र।

पृष्ठ ७०६, पं० २७—'**२०-२१ पर छपा है**' यहां '**२१२-२१३ पर छपा है**' इस प्रकार पाठ शुद्ध करें।

पृष्ठ ७१२, की पं० २, ११, १३, १४ पर टिप्पणी की क्रमशः १,२, ३,४ संख्या छपी है। नीचे तीन टिप्पणियां हैं। यहां संख्या १ की टिप्पणी —'यह पत्र म० मुंशीराम द्वारा सम्पादित ऋ० द० का पत्रव्यवहार, भाग १, पृष्ठ २१ पर छपा है' छूट गई है। अतः आगे की टिप्पणियों पर १-२-३ स्थान में २-३-४ संख्या डालें।

पृष्ठ ७१८, पं० १०—'**एक पत्र आपका मेरे पास आया था**'—यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ६१२ भाग २, पृष्ठ ६२८-६२६ पर छपा है।

पृष्ठ ७२१, पं० १७-१८—'**१ रजिस्टरी श्री हिजूर साहेबां के नाम**'—यह पत्र हमें नहीं मिला। इसको भाग २, पृष्ठ ६४१, पूर्ण संख्या ६३० पर पत्र-सूचना छापी है।

पृष्ठ ७२१, पं० १८—'**कृपा पत्र एक मेरे नाम आया**'—यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ६३१, भाग २, पृष्ठ ६४१-६४२ पर छपा है।

पृष्ठ ७२२, पं० १८-२१—इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि ऋ० द० ने वेद को कण्ठस्थ करनेवाले छात्रों के लिये छात्रवृत्ति का प्रबन्ध भी महाराणा सज्जनसिंह द्वारा कराया था।

पृष्ठ ७२२, पं० २२-२३—इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि कन्याली =चाणोदकन्याली (गुजरात में नर्मदा तट पर) में कुछ गुर्जर ब्राह्मण भी अथर्ववेदी थे। पत्र लेखक हीरालाल आथर्वणी भी गुजराती ब्राह्मण था।

यह उसके पत्र की गुर्जर भाषा से स्पष्ट है। पूर्व पूर्ण संख्या ३७६, भाग ३, पृष्ठ ४६३ की सत्रहवीं पंक्ति में भी चाणोद कन्याली में अथर्ववेदी ब्राह्मणों के घरों का उल्लेख मिलता है। सम्प्रति अथर्ववेदी ब्राह्मण प्राय: महाराष्ट्रिय उपलब्ध होते हैं। गुर्जर अथर्ववेदीयों के अथर्ववेद के पाठ का अनुसन्धान होना चाहिये।

पृष्ठ ७२३, पं० २६—'**आप का पतर आया**' इस पर टिप्पणी देवें—'यह पत्र हमें नहीं मिला'।

पृष्ठ ७२४, पं० १६—यहां जिस पत्र को भेजने का उल्लेख है, वह पूर्व पूर्ण संख्या ५८८ भाग ४, पृष्ठ ७२०-७२१ पर छपा है।

पृष्ठ ७२६, पं० १०—'**यह पत्र आपु का आया था**'—यह पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ६०८, भाग २, पृष्ठ ६२२-६२३ पर छपा है।

पृष्ठ ७३१, पं० ३१—'**१५८-१६०**' के स्थान में '**१५७-१६०**' पाठ शोधें।

पृष्ठ ७३१, पं० २०-२१—'**एक व्याख्यान दिल्ली में गुरुद्वारे के बीच दिया**' गुरुद्वारे में व्याख्यान देना उस समय के सिखों के परम औदार्य को प्रकट करता है।

पृष्ठ ७३२, पं० १६—'**आपके पत्र का उत्तर**'—लाला सांईदास को लिखा गया ऋ० द० का पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ है। इस पत्र के संकेत से पूर्ण संख्या ६१७, भाग २, पृष्ठ ६३२ पर पत्र-सूचना छापी है।

पृष्ठ ७३७, पं० ७-११—**प्रताप सींघ**—ये मसूदा के रावराजा बहादुरसिंह द्वारा भेजे गये व्यक्ति हैं। द्र०—पूर्व पृष्ठ ७३४, पं० ६।

पृष्ठ ७३६, पं० ३१—'**पूर्ण संख्या ५६८, पृष्ठ ७२६**' इसके स्थान में '**पूर्ण संख्या** ६०२, **पृष्ठ ७३३**' शोधें।

पृष्ठ ७४२, पं० १६—पूर्ण संख्या ६११ के पत्र पर तिथि तारीख न होने से यहां अज्ञात तिथि के पत्रों में छापा है। परन्तु पूर्व पूर्ण संख्या ४१२ के पत्र (भाग ३, पृष्ठ ५०५, पं० ६) के '**भगत के पं० महादेव का पत्र पहुंचता है।**' लेख के अनुसार इस पत्र को पूर्ण संख्या ४१२ के पत्र से पूर्ववर्ती ही जानना चाहिये।

पृष्ठ ७४५, पं० १५ में आगे छपा पूर्ण संख्या ६१५ का पत्र **सम्भव है पूर्ण संख्या ४७२** (भाग ३, पृष्ठ ५५७) **से** पूर्व हो।

पृष्ठ ६५, पं० २६–'**चतुर्थ परि०**' के स्थान में '**तृतीय परिशिष्ट**' शोधें।

अवशिष्ट संशोधन तथा टिप्पणियां

पृष्ठ ३७४, पं० ३०—'**६२ पर छपा है**' के स्थान में '**२६८ पर छपा है**' इस प्रकार शोधें।

पृष्ठ ३६८, पं० ११-१२ तथा पृष्ठ ४६५, पं० २६–पर **गिरानन्द** का उल्लेख मिलता है। इसके विषय में पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ६०० में उदयपुर वर्णन में लिखा है—'गिरानन्द साधु अन्धा भी साथ था। उसने पुलिस में स्वामी जी के सम्बन्ध में रिपोर्ट की कि यह मुझे जन्मभूमि में जाने नहीं देते। पुलिस ने रिपोर्ट वापस कर दी, परन्तु स्वामी जी ने उसकी शरारत के कारण, जो केवल टके के लिये थी, उसे निकाल दिया।'

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित, भाग २, पृष्ठ ६७५ पर लिखा है—गिरानन्द एक अन्धा साधु सम्भवतः मसूदा से ही महाराजा के साथ था। महाराजा ने उसे अपने साथ इसलिये रखा था कि उसे कुछ शिक्षा देकर किसी योग्य बना दें ताकि वह उपदेशक का कार्य करके स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध कर सके। परन्तु उसकी प्रकृति नीच थी। उसने महाराज की दया का यह बदला दिया कि एक दिन पुलिस में रिपोर्ट करने चला गया कि स्वामी जी मुझे मेरे देश नहीं जाने देते········· उन्होंने उसे निकाल दिया।'

पृष्ठ ४७८, पूर्ण संख्या ३९५—**सहजानन्द** का पत्र—इस संग्रह में स्वामी सहजानन्द के १० पत्र छपे हैं। द्र०-पूर्ण संख्या ३९५, ४२६, ४४२, ४६४, ४८७, ५१५, ५२८, ५६७, ५९५, ५९९।

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग २, पृष्ठ ६७६ पर स्वामी सहजानन्द के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। उसका सार यह है कि 'विहार प्रान्त के एक संन्यास-वेषधारी व्यक्ति ने आकर ऋषि दयानन्द से कहा कि मैंने वैराग्यवश गेरुवे वस्त्र तो धारण कर लिये हैं परन्तु विधिवत् संन्यास की दीक्षा नहीं ली। आप संन्यास की दीक्षा देकर मुझे कृतार्थ करिये। महाराज ने परीक्षा करके योग्य और सुपठित जानकर संन्यासाश्रम में दीक्षित किया।'

संन्यास की दीक्षा के अनन्तर ऋषि दयानन्द ने **समस्त आर्यसमाजस्थ प्रधानादि के नाम** एक पत्र लिखकर दिया था। उसे पूर्ण संख्या ७६७, भाग २, पृष्ठ ७६६ पर देखें। ठाकुर नन्दकिशोरसिंह को लिखे गये पूर्ण संख्या ६२६ के पत्र में ऋ० द० ने स्वामी सहजानन्द के द्वारा नवीन समाजों की स्थापना होने का उल्लेख किया है। द्र०–भाग २, पृष्ठ ६४०, पं० १६-१७)।

पृष्ठ ५६५, पूर्ण संख्या ४७६—**ईश्वरानन्द** का पत्र—इस संग्रह में ईश्वरानन्द के १४ पत्र संगृहीत हैं। इनकी पूर्ण संख्या ४७६, ४६१, ४६८, ५०२, ५११, ५२२,५२५, ५३५,५५४,५७२,५८१, ५८८,५६२, ५६६। इन स्वामी ईश्वरानन्द के सम्बन्ध में पं० लेखरामकृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ६११ पर लिखा है—'स्वामी जी ने यहां (=शाहपुरा) एक ब्राह्मण (जो थोड़ा सा पढ़ा हुआ था, उसके अनुरोध पर संन्यास ग्रहण कराया)और दण्ड धारण कराया। और उसका नाम ईश्वरानन्द सरस्वती रखा गया (और उसी समय मे विद्या पढ़ने के लिए प्रयाग भेज दिया और वहां [वै० यं० के] मैनेजर के नाम चिट्ठी लिख दी कि जब तक यह विद्या पढ़ता रहे दस रुपया मासिक इसे भोजन के लिये मिलता रहे, वह प्रयाग चला गया)।'

पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग २, पृष्ठ ६८८ पर लिखा है—'वैदिक यन्त्रालय के मैनेजर को लिख दिया कि जब तक पढ़ता रहे उसे ५ रु० मासिक मिलता रहे।'

ईश्वरानन्द को प्रयाग भेजते समय प्रबन्धकर्त्ता वै० यं० को जो पत्र लिखा था, वह हमें नहीं मिला। परन्तु ऋ० द० ने ईश्वरानन्द को जो पूर्ण संख्या ७६५ का पत्र लिखा था, उसमें ५)पांच रुपये मासिक का ही उल्लेख है (द्र०–भाग २, पृष्ठ ८२६, पं० २०)। इससे पं० देवेन्द्रनाथ का लिखना सही है, यह प्रमाणित होता है।

स्वामी ईश्वरानन्द के सम्बन्ध में म० मुंशीराम जी ने 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' भाग १ की भूमिका में जो लिखा है, उसे वहीं देखें। म० मुंशीराम जी की भूमिका इसी भाग के आरम्भ में छाप रहे हैं।

पृष्ठ ५८६, पं० २८—'**पृष्ठ १४०, १४१**' के स्थान में '**पृष्ठ ३-४**' इस प्रकार शोधें।

पृष्ठ ५६१, पं० २६—'**पृष्ठ ३०६-३०७**' के स्थान में '**पृष्ठ ४६७-४६८**' ऐसा पाठ बनावें।

द्वितीय परिशिष्ट

यजुर्वेदभाष्य और संशोधित सत्यार्थप्रकाश में मांस-भक्षण

ऋषि दयानन्द के **यजुर्वेदभाष्य** अ० १३ मन्त्र ४७ से लेकर ५२ वें मन्त्र तक के भाष्य में कुछ ऐसा लेख था, **जिससे मांस-भक्षण का समर्थन सा प्रतीत होता था**। ये पृष्ठ कम्पोज हो गये थे और छपने से पूर्व मुंशी समर्थदान, प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय की इन पर दृष्टि पड़ी। उन्होंने उन पृष्ठों को ऋषि दयानन्द के पास पुन: शोधनार्थ भेजा। इस विषय का मुंशी समर्थदान का कोई पत्र उपलब्ध नहीं हुआ, परन्तु ऋषि दयानन्द के पत्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्हें पुन: शोधने के लिए मुंशी समर्थदान ने भेजा था।

१—ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेदभाष्य के १३वें अध्याय की प्रेस कापी के पृष्ठ ४५९ के दूसरी ओर (पीठ पर) निम्न पंक्तियां अपने हाथ से लिखी थीं—

"जैसा इन को शोध के भेजते हैं वैसा पुन: कम्पोज करके छपवा दो और जो कहीं शोधने में भूल रह गई हो तो तुम वहां शोध लेना, **जिससे मांस-भक्षण का अभिप्राय कुछ भी न रहे**। बाकी सब पत्रों का उत्तर कल भेजेंगे और अगले अङ्क के पत्रे तथा थोड़े से सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी भेजेंगे।"

यह लेख ऋषि दयानन्द ने फा० शु० ९ शनिचर सं० १९३९ (=१७ मार्च सन् १८८३) को लिखकर भेजा था। देखो अगला उद्धरण।

२—ऋषि दयानन्द अपने फा० शु० ९ शनिचर सं० [१९३९] के पूर्ण संख्या ७७२ के पत्र में लिखते हैं—

"(८) हमने **आज** मन्त्र ४७ से लेकर ५२ मन्त्र तक के पत्रे शोधकर[1] आज आये **और** आज ही रजिस्ट्री कराकर भेज दिये हैं। उनमें से जहां-जहां मांस खाने का विषय [था] काट दिया और उचित अर्थ कर दिया

---

१. यहां 'शोधने के लिये' पाठ होना चाहिये।

है।........ यदि शीघ्रता से शोधने में मांस खाने में कोई रह गया है तो उसको तुम कटवा देना और उचित धरवा देना।" ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ८०५-८०६।

इस से दो बातें स्पष्ट होती हैं—

(क) कहीं कहीं शीघ्रतावश अथवा अन्य कारण से वेदभाष्य में ऐसा अंश लिखा गया था, जिसे मांस-भक्षण के पक्षपाती 'वेद में मांस-भक्षण का विधान है' के रूप में उपस्थित कर सकते थे, अथवा 'ऋषि दयानन्द मांस-भक्षण के विरोधी नहीं थे' ऐसा कह सकते थे।

(ख) मुंशी समर्थदान जब से वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ता हुए तब से उनका यही प्रयत्न रहा कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ शुद्धरूप में प्रकाशित हों। कोई ऐसा भ्रामक वचन न रहे जिसका ग्रन्थकार के अभिप्राय से भिन्न अर्थ निकाला जा सके। सत्यार्थप्रकाश के मुद्रणकाल में तो उसने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा था।

सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास में मार्जन (हाशिये) पर बढ़ाया गया एक ऐसा पाठ था, जिसे मांसभक्षी प्रमाणरूप में उपस्थित कर सकते थे। उसके सम्बन्ध में मुंशी समर्थदान ने १३-७-८३ को एक पत्र भेजा था, जिस का कुछ अंश इस प्रकार है—

"श्री महाराज, नमस्ते

निवेदन यह है कि वेदभाष्य में जो मांसभक्षण का विधान आया था उसको तो आप ने निकाल दिया था और मुझ को भी आज्ञा दी थी कि मांस का विधान न आये इस प्रकार से छाप दो सो मैंने छाप दिया था।[1] अब सत्यार्थप्रकाश के भक्ष्याभक्ष्य[2] का प्रकरण पाया इसमें भी आपने मांस खाने की आज्ञा स्पष्ट दी है।

प्रथम जब पुस्तक लिखा गया था तब तो मांस की आज्ञा नहीं दी, पीछे से शोधते समय आपने दी है ऊपर से आपने बनाया है।[3] इससे मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसको काट दूं। इसलिये आप से निवेदन किया है। अब जैसी आपकी आज्ञा हो वैसा किया जाये। आपने ऐसी आज्ञा दी है कि

१. द्र०—यजुर्वेदभाष्य के सम्बन्ध में पूर्व उद्धृत संख्या १, २ के उद्धरण।

२. अर्थात् दसवां समुल्लास।

३. अर्थात् मूल पाठ पर ⌣ चिह्न बनाकर मार्जन पर लिखा है।

जिन पशुओं को क्षत्रिय खेतों की रक्षा के लिये मारें वा अन्य ऐसे कारणों से मारें तो उनका मांस खावे तो कुछ दोष नहीं है।[१]........"

ऋ० द० को लिखे गये पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ ५८८।

मुंशी समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश (संशोधित) की प्रेस कापी के जिस पाठ की ओर ऋ० द० का ध्यान आकृष्ट किया था। वह निम्न प्रकार है-

हस्तलिखित कापी के पृष्ठ १८३ का आरम्भ इस प्रकार होता है—

पंक्ति १—चाहे खायें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें या जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती।

पंक्ति २—किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है........[१]

यहां प्रथम पंक्ति के **'खायें चाहे'** तथा **'वा जला देवें'** ये पद संशोधन के समय पंक्ति के ऊपर लिखे गये हैं। इनमें से **'खायें चाहे'** पद कटे हुए हैं। **'वा जला देवें'** पद न कटे हुए हैं और नाही द्वितीय संस्करण में छपे हैं। प्रथम पंक्ति का अन्तिम पद **'होती।'** पंक्ति के अन्त में मार्जन पर बढ़ा कर लिखा गया है। अर्थात् मूल में प्रथम पंक्ति **'नहीं'** पर समाप्त होती थी। द्वितीय पंक्ति के प्रथम **'किन्तु'** पद से पूर्व ⌣ ऐसा चिह्न देकर मार्जन (हाशिये) पर तीन पंक्तियों में निम्न पाठ लिखा हुआ है—

प्रश्न—सब मांस भक्ष्य वा अभक्ष्य है (उत्तर) अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटोऽभक्ष्यो ग्राम्यशूकरः। जो ग्राम में कुक्कुट और सूकर तथा मांसाहारी सब पशु पक्षी तिर्यक् जो पेट से चलते हैं अशुद्धाहारी मत्स्यादि हैं वे सब अभक्ष्य और इन से भिन्न शुद्धाहार जांगल सब भक्ष्य हैं परन्तु यह बात राजवर्गी मनुष्यों के लिये है अन्य के लिये नहीं (प्रश्न) ग्राम के कुक्कुट आदि अभक्ष्य और वानप्रस्थ भक्ष्य हैं इसमें क्या युक्ति है? (उत्तर) ग्रामस्थ कुक्कुट आदि उपकारक अशुद्धाहारी अभक्ष्य और जङ्गलवासी हानिकारक शुद्धाहारी भक्ष्य हैं।[२]

प्रथम पंक्ति के ऊपर बढ़ाया हुआ पाठ और हाशिये पर लिखा तीन पंक्तियों का पाठ प्रेस कापी की प्रतिलिपि करनेवाले से भिन्न व्यक्ति द्वारा

---

१. यह सत्यार्थप्रकाश में हाशिये पर लिखे लेख का सारांशरूप है।

२. द्र०—श्री हरविलास सारडा कृत 'वर्क्स आफ महर्षि दयानन्द' ग्रन्थ के पृष्ठ ७० के सामने सत्यार्थप्रकाश की प्रेस कापी के पृष्ठ की फोटो प्रिंट कापी।

पतली कलम से लिखा हुआ है। ये पंक्तियां किसने लिखीं और काटीं इस पर आगे विचार किया जाता है—

सब से प्रथम इस विवाद को ला० मूलराज एम० ए० ने उठाया था और महात्मा मुंशीराम जिज्ञासु (श्री स्वामी श्रद्धानन्द) ने १० नवम्बर सन् १९१६ में जो '**वेद और आर्यसमाज**' शीर्षक लेख प्रकाशित किया था, उसमें इस पर विचार किया है।[1] तत्पश्चात् महात्मा हंसराजजी ने लाला मूलराज एम० ए० द्वारा लिखित **दशप्रश्नी** पुस्तिका (ट्रैक्ट) के उत्तर में लिखित '**दशप्रश्नी की समीक्षा**' नामक ट्रैक्ट में विचार किया है।[2]

महात्मा मुन्शीराम जिज्ञासु के लेख का सारांश—म० मुंशीरामजी ने इस पर विस्तार से विचार किया है और समर्थदान के पूर्व उद्धृत १७-७-८३ के पत्र को उद्धृत करके जो विस्तृत विचार प्रस्तुत किया है, उस का सारांश इस प्रकार है—

"सत्यार्थप्रकाश में जो पाठ और पंक्तियां बढ़ाई गई हैं, उसमें पं० ज्वालादत्त का हाथ था। जब समर्थदान को ऋ० द० ने हस्तलिखित पुस्तक भेजी थी तो उसमें मांस खाने की आज्ञायुक्त लेख नहीं था। उसे समर्थदान ने ऋषि की आज्ञा मांग कर काट दिया। 'किन्तु उस मनुष्य' इस वाक्य के आरम्भ में ⌣ चिह्न देकर जो पाठ हाशिये पर लिखा है उस की ऋ० द० की अगली इबारत के साथ कोई सम्बन्ध नहीं बनता।"

हमारा विचार म० मुंशीराम जी से दो बातों में भिन्न है—

१—ऊपर परिवर्धित पद तथा परिवर्धित पंक्तियां पं० ज्वालादत्त के

---

१. म० मुन्शीराम के उक्त लेख को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने 'आर्य-मर्यादा' पत्र के २६ दिसम्बर १९८२ के अङ्क के रूप में पुस्तकाकार छापा है। हमने भी इस लेख को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझ कर रामलाल कपूर ट्रस्ट की 'वेदवाणी' पत्रिका के फरवरी १९८३ के अङ्क में प्रकाशित किया है।

२. 'दशप्रश्नी' नाम की हिन्दी पुस्तिका (ट्रैक्ट) 'दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी अजमेर' (सन् १९३३) के अवसर पर श्री पं० विश्वबन्धु की ओर से बांटी गई थी। इसमें 'प्रश्न' किसी भक्त के हैं और 'उत्तर' लाला मूलराज के। (यह पुस्तिका = ट्रैक्ट हमारे पास नहीं है।) इस दशप्रश्नी का नवम प्रश्न और उसका उत्तर द्रष्टव्य है। इस प्रश्नोत्तर को तथा महात्मा हंसराज जी द्वारा लिखित समीक्षा को हम आगे दे रहे हैं। महात्मा हंसराज द्वारा लिखित 'दशप्रश्नी की समीक्षा' ट्रैक्ट हमारे पास विद्यमान है।

हाथ की नहीं हैं। ऋ० द० के हाथ की लिखी हुई हैं। ऋ० द० के हस्त-लेखों पर विशेषरूप से काम करने के कारण मैं बड़ी सूक्ष्मता से ऋ० द० के हस्तलेख को पहचानता हूँ। बड़ी हुई पंक्तियों की भाषा भी ऋ० द० की है, अन्य की नहीं है।

२—मुंशी समर्थदान के १३-७-८३ के पूर्व उद्धृत पत्र के **'प्रथम जब पुस्तक लिखा गया था तब तो मांस की आज्ञा नहीं दी। पीछे से शोधते समय आप दी है ऊपर से आपने बनाया है। इससे मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसे काट दूं।''** पाठ का जो अभिप्राय म० मुंशीरामजी ने समझा है (जब समर्थदान को हस्तलिखित पुस्तक दी थी तब उसमें मांस खाने की आज्ञा-युक्त लेख नहीं था) वह उक्त पत्र से कतई प्रकट नहीं होता। उसका तो सीधा सादा अभिप्राय है–'जब हस्तलेख लिखा गया उस समय उसमें मांस खाने की आज्ञा नहीं थी, संशोधन करते समय आपने दी है। यह आशय पत्र के **'शोधते समय ऊपर से आपने बनाया है'** शब्दों से स्पष्ट है। इसमे यह भी स्पष्ट है कि मुन्शी जी इस लेख को ऋ० द० के हाथ का लिखा हुआ मानते थे। अन्यथा 'मेरी शक्ति नहीं कि मैं इसे काट दूं' ऐसा न लिखते। मुन्शी समर्थदान का प्रबन्धकर्त्ता वेदभाष्य कार्यालय(बम्बई)तथा प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय के रूप में वर्षों ऋ० द० के साथ सम्पर्क रहा है। अतः मुंशी समर्थदान ऋ० द० के हस्तलेख को भली प्रकार पहचानते थे। यदि उक्त लेख ऋ० द० का न होता तो वे **'आपने लिखा'** के स्थान में **'आपने लिखवाया'** तथा **'आपने बनाया'** के स्थान में **'आपने बनवाया'** शब्दों का प्रयोग करते।

म० मुंशीराम जी के लेख से स्पष्ट है कि उन्होंने इसे पं० ज्वालादत्त का बढ़ाया हुआ सिद्ध करने के लिए पं० ज्वालादत्त के पत्रों के हस्तलेख से मिलान किया था। हो सकता है कि पं० ज्वालादत्त का हस्तलेख ऋ०द० के हस्तलेख से मिलता हो। इस साम्यता से म० मुंशीराम जी धोखा खा सकते हैं, परन्तु मुंशी समर्थदान, जो वर्षों साथ रहने के कारण दोनों के हस्ताक्षरों से भली भांति परिचित था, धोखा नहीं खा सकता था।

हमारे विचार में म० मुंशीराम जी ने इस प्रश्न पर जिस रूप में विचार किया है, उसका एक कारण यह भी है कि उन्हें 'वेदभाष्य में आये हुए मांसभ-क्षण के प्रकरण को मुंशी समर्थदान द्वारा लौटाना और ऋ० द० का उसे शोधकर भेजना' प्रकरण का परिज्ञान नहीं था।

अब मांस-भक्षण प्रश्न को उठाने वाले लाला मूलराज एम० ए० के सम्बन्ध में भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। क्योंकि अनेक लोग कहा करते हैं कि लाला मूलराज के मांसाहारी होने का ज्ञान होते हुए भी ऋ० द० ने उन्हें परोपकारिणी सभा का सदस्य और उपसभापति बनाया था।

हमारी तुच्छ मति में यह बात किसी प्रकार नहीं जमती, क्योंकि स्पष्ट वक्ता दयानन्द जब महाराणा सज्जनसिंह को एकलिंग महादेव के मन्दिर का महन्त बनने की प्रार्थना पर दो टूक उत्तर दे सकता था और जोधपुर नरेश को उनके वेश्यागामी होने का ज्ञान होने पर कठोर शब्दों में फटकार सकता था, तो उनकी तुलना में लाला मूलराज की कौन ऐसी बड़ी हस्ती थी, जिसके कारण उनके मांसाहार का ज्ञान होने पर भी उन्हें परोपकारिणी सभा का उपसभापति बनाते? वास्तविकता यह है कि लाला मूलराज ने अपने मांसाहारी होने की बात को सदा छिपाये रखा। इसमें उन के साथियों ने भी उनका साथ दिया। ऋषि दयानन्द को अन्त तक लाला मूलराज के मांसाहारी होने का ज्ञान नहीं हुआ। लाला मूलराज मांसाहारी थे। इसी कारण वे ऋ० द० द्वारा गोकरुणानिधि पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करने के आदेश को अन्त तक टालते रहे। इस विषय के ऋ० द० के कई पत्र द्रष्टव्य हैं। यथा–**इसका अंग्रेजी तर्जुमा जल्दी कर के हमारे पास रवाना कर दीजिये** (ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५५८, भाग १, पृष्ठ ५६६, पं० ८-९), "**प्रथम ही गोकरुणानिधि** की प्रति आपके पास इस अभिप्राय से भेजी है कि इसका बहुत अच्छा तर्जुमा अंग्रेजी भाषा में कर दीजिये .....वह अंग्रेज राजपुरुषों.....के अवलोकनार्थ विलायत तक भेजी जावे" (वही पूर्ण संख्या ५७८, भाग २, पृष्ठ ६१५, पं० २९ तथा पृ० ६१६, पं० १-३), "देश की उन्नति के वास्ते थोडा अवकाश निकालना चाहिये" (वही, पूर्ण संख्या ६००, पृष्ठ ६४५, पं० ४-५), 'आपने अब तक' गोकरुणानिधि की अंग्रेजी नहीं की। हमें निराश होकर यहां बम्बई में और लोगों से **अङ्गरेजी बनवानी पड़ी**' (वही, पूर्ण संख्या ६५८, पृष्ठ ६८८, पं० ११-१३)।

१. पहला पूर्ण संख्या ५५८ का पत्र ३ मार्च १८८१ का है और ६५८ का २९ अप्रेल १८८२ का। इस प्रकार थोड़े से पृष्ठों की गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद लगभग १४ महीनों में भी करके नहीं दिया।

ऋ० द० बड़े शुद्ध हृदय और सरलचित्त थे। **आत्मवत्सर्वभूतेषु** के अनुसार लाला मूलराज को भी वे अपने समान शुद्ध हृदय और सरल चित्त वाला समझते थे।

ऋ० द० ने भारतीय नवयुवकों को कला-कौशल की शिक्षा देने के लिये जिन जर्मन प्रोफेसरों से पत्रव्यवहार किया था। उनमें से जी० वाइज नाम के प्रोफेसर ने इस कार्य में बहुत रुचि और उत्साह दिखाया, परन्तु इन्हीं लाला मूलराज की सम्मति को स्वीकार करके ऋषि दयानन्द ने प्रो० जी० वाइज को लिखा कि 'हमारी कमेटी और कई विशिष्ट व्यक्तियों की राय है कि नौजवान आर्यों को यूरोप में..........भेजना जरूरी नहीं है' यह अंश जी० वाइज ने अपने पत्र में उद्धृत किया है। (द्र०—ऋ० द० को लिखे गये पत्र विज्ञापन पूर्ण संख्या २०१, भाग ३, पृष्ठ २६०, पं० २५-३०)। इसी पत्र में जी० वाइज ने सलाह दी है—"आप कमेटी की परवाह न करें......" (वही, पृष्ठ २६७, पं० २)।

हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि लाला मूलराज ब्रिटिश सरकार द्वारा ऋ० द० के प्रति नियुक्त गुप्तचर थे। अन्यथा इतनी बड़ी देशोन्नति के कार्यक्रम के लिये वे विपरीत सम्मति कभी न देते।

अब 'दश-प्रश्नी' में मांस-भक्षण के विषय में उठाये गये लाला मूलराज के आक्षेप और उसकी समीक्षा में महात्मा हंसराज जी ने जो लिखा है, उसे उद्धृत करके इस प्रकरण को समाप्त करते हैं।

नवें प्रश्न के उत्तर के विषय में

नवें प्रश्न के उत्तर में राय साहिब इस बात पर बल देते हैं कि आज कल स्वामीजी के जो ग्रन्थ छपते हैं उनसे यह पता नहीं लगता कि कौनसा भाग स्वामी जी का लिखा हुआ है और कौन से भाग में दूसरों का हाथ है। इसके लिए उनकी पहली युक्ति यह है कि पहले सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी ने लिखा था कि मांस तथा अन्य खाद्य पदार्थों का यज्ञ में होम के पश्चात् सेवन किया जाये। और पहली संस्कारविधि में यह लिखा था कि अन्नप्राशन संस्कार के अवसर पर बच्चों को तीतर का शोरवा पिलाना चाहिये।[1]

---

१. इस पर विशेष विचार इसी भाग के आरम्भ में छपे 'उपोद्घात' प्रकरण में 'यज्ञ में पशुबलि अथवा मांस-हवि' शीर्षक देखें।

इस बात के जतलाने के लिए राय साहिब की आवश्यकता नहीं थी, सनातनी पण्डित कालूराम और पं० अखिलानन्द ने भी कई बार यह जतलाया है, परन्तु स्वामी जी के विरुद्ध लिखनेवाले यह भूल जाते हैं कि संस्कारविधि में उस स्थल पर यह भी लिखा था कि **यह एक देशी मत है** अर्थात् एक विशेष सूत्र-ग्रन्थ का मत है सब का नहीं, और स्वामी जी ने कई स्थलों पर मांसभक्षण का खण्डन भी किया है और राय साहिब ने भी उनके व्याख्यान सुने होंगे। स्वामीजी महाराज ने वेदभाष्य की पत्रिकाओं में अपने जीवनकाल ही में कई बार नोटिस दिया कि उनके सत्यार्थप्रकाश[1] में कई गलत बातें छप गई हैं। उन्होंने गोकरुणानिधि पुस्तक को भी अपने जीवनकाल में ही प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने केवल गोरक्षा का मण्डन ही न किया था बल्कि सामान्य मांसभक्षण के विरुद्ध भी लिखा था। मुझे अच्छी तरह ज्ञात है कि **गोकरुणानिधि की हस्तलिखित कापी स्वामीजी के अपने हाथ से ठीक की हुई राय साहिब के पास विद्यमान थी और उन्होंने मुझे वह कापी दिखलाई थी।** उस अवस्था में क्या राय साहिब का कर्त्तव्य नहीं था कि वे स्वामीजी महाराज से निवेदन करते कि आप पहले मांस के पक्ष में थे और अब आप मांस का विरोध करते हैं। उनके जीवन में तो राय साहिब को यह साहस नहीं हुआ कि वे उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करें और हमारे सामने आक्षेप पेश करते हैं। हमारा उत्तर तो यही है कि जो नोटिस स्वामी जी महाराज ने दिया है, वह ठीक है।

श्री स्वामी जी के पुस्तकों के सम्बन्ध में राय साहिब की दूसरी युक्ति यह है कि कार्य की अधिकता के कारण स्वामी जी संस्कृत में वेदभाष्य लिखवा देते थे और पं० भीमसेन और पं० ज्वालादत्त उसका अनुवाद हिन्दी में कर देते थे और यह कि स्वामी जी के देहान्त के बाद कुछ **भाग संस्कृत से हिन्दी में किया गया।**

यह ठीक है कि स्वामी जी महाराज अपने हाथ से नहीं लिखते थे, बल्कि पण्डितों को लिखवाते जाते थे, परन्तु राय साहिब इस बात को भूल गये हैं कि स्वामी जी के पुस्तकों पर उनके अपने हाथों से संशोधन किए हुए विद्यमान हैं, जिन पुस्तकों का संशोधन उन्होंने स्वयं किया और उनमें कोई कांट छांट नहीं हुई उन पुस्तकों पर अविश्वास की मोहर कैसे लग सकती है? आर्यसमाजियों की यह इच्छा रही है कि स्वामी जी के

---

१. यहां सन् १८७५ में छपे सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में जानना चाहिये।

पुस्तकों को छपने से पहले असली कापी के साथ तुलना करली जाए। इस काम के लिये वह उपसभा नियत हुई थी, जिसका राय साहिब ने संकेत किया है। दो तीन वर्ष हुए कि एक उपसभा संस्कारविधि के संशोधन के लिए नियत हुई थी, और मुझे भी उसका सदस्य बनाया गया था। वर्त-मान संस्कारविधि का असली हस्तलिखित संस्कारविधि के साथ तुलना करके संशोधन किया गया। इस समय भी परोपकारिणी सभा इस बात में संलग्न है कि स्वामी महाराज के हस्तलिखित पुस्तकों की फोटो ली जाये, और सत्यार्थ-प्रकाश के पुस्तक की फोटो ली जा चुकी है। इससे स्पष्ट है कि परोपकारिणी सभा अपने कर्तव्य का पूरी ईमानदारी से पालन कर रही है। राय साहिब परोपकारिणी सभा के स्वयं कार्यकर्ता प्रधान हैं और यदि वे अपना कुछ समय परोपकारिणी के कामों के लिए व्यय करें तो बहुत सेवा कर सकते हैं।

तीसरी युक्ति मुन्शी समर्थदान भूतपूर्व मैनेजर वैदिक यन्त्रालय से सम्बन्ध रखती है। राय साहिब के कथनानुसार मुन्शी समर्थदान मांस के बहुत विरोधी थे और श्री स्वामी जी के लेख को इस विषय में उन्होंने काट दिया। १८९१ में मुन्शी समर्थदान के विचार में परिवर्तन आ गया और उन्होंने राय साहिब के सामने अमृतसर में आकर बड़ा पश्चात्ताप प्रकट किया कि क्यों उन्होंने उन वाक्यों को जो मांसभक्षण के पक्ष में थे, काट दिया। परोपकारिणी का कर्त्तव्य है कि वह इस विषय में खोज करें।[1] परन्तु क्या राय साहिब के मन में यह विचार कभी नहीं आया कि मुन्शी समर्थदान जिसने श्री स्वामी दयानन्द के साथ गद्दारी (विद्रोह) की, वह राय साहिब के सामने भी उनको प्रसन्न करने के लिए झूठ बोलता हो।[2]



---

१. खोज करने की आवश्यकता नहीं है। राय साहब ने मुन्शी समर्थदान के विषय में जो कुछ लिखा है, सफेद झूठ है। मुन्शी समर्थदान ने सत्यार्थप्रकाश का मांसभक्षण विषय स्वयं नहीं काटा, अपितु स्वयं काटने में अपनी असमर्थता प्रकट की है। देखो पूर्व पृष्ठ ६२१ पर छपा मुन्शी समर्थदान का १३–७–८३ का पत्र।

२. दशप्रश्नी की समीक्षा ४ नवम्बर १९३३ में २०×३० अठपेजी आकार में गुलाबी रङ्ग के कागज पर लाहौर में छपी थी। उपर्युक्त सन्दर्भ हमने इस के पृष्ठ १३-१४ से लेकर छापा है।

तृतीय परिशिष्ट

ऋ० द० सरस्वती को लिखे गये पत्र और विज्ञापनों में निर्दिष्ट आवश्यक सामग्री का संकलन

पृष्ठ ७० पं० २२-२३—**कल मजिस्ट्रेट की सेवा में एक प्रार्थना पत्र ·········दिया था—**

पत्र का सारांश

हम को छावनी में सार्वजनिक सभा करने और उसमें शास्त्रार्थ कर करने की आज्ञा दी जावे।[1] १६ अगस्त सन् १८७८।

मैजिस्ट्रेट[2] के उत्तर का सारांश

हम ऐसे शास्त्रार्थ की न रुड़की में, न सिविल स्टेशन में, न छावनी में कहीं आज्ञा नहीं देते।[1]

[मुसलमानों द्वारा पुनः पूछने पर]

कब्रिस्तान में जाकर शास्त्रार्थ करो।[1]

पृष्ठ ७०, पं० २४-२५—**आज कर्नल साहब की सेवा में एक प्रार्थना पत्र एतदर्थ दिया—**

कर्नल मानसल को लिखा गया पत्र

श्रीमान्[3] जी ! सेवा में यह निवेदन है हम लोगों से कह कह कर पंडित दयानन्द सरस्वती जी ने जो मौलवी मुहम्मद कासिम को शास्त्रार्थ

---

१ यह सारांश पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) में पृष्ठ ७८२ पर आर्यदर्पण अक्तूबर सन् १८७७ के हवाले से छपा है। यह प्रार्थना-पत्र कुछ मुसलमानों की ओर से दिया गया था।

२. अर्थात् कप्तान डबल्यू, स्टुअर्ट।

३. इस से पूर्व लेख है—'फिर मौलवी [मुहम्मद कासिम] साहब ने ऐसा ही (जैसा मैजिस्ट्रेट साहब को दिया था) मुसलमानों से कर्नल मानसल साहब की सेवा में भिजवाया। द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ७८२।

के लिये बुलवाया है तो हम लोगों ने श्रीमान् मैजिस्ट्रेट साहब बहादुर से शास्त्रार्थ के लिये एक खुले मैदान की प्रार्थना की थी जिस पर मैजिस्ट्रेट साहब ने यह लिखा कि हम शास्त्रार्थ की न रुड़की में, न सिविल स्टेशन में, न छावनी में, कहीं आज्ञा नहीं देते। अब चूंकि पंडित दयानन्द सरस्वती जी बार बार यह अनुरोध करते हैं कि मेरे मकान पर आकर शास्त्रार्थ करो और वह स्थान आपके अधिकृत क्षेत्र में है। इसलिये सेवा में प्रार्थी हैं कि श्रीमान् हम लोगों को पंडितजी के मकान पर साधारणरूप से जाने की आज्ञा दें ताकि मौलवी साहब विवश होकर उन्हीं के मकान पर जाकर शास्त्रार्थ करें। उचित जानकर निवेदन किया

निवेदक—मुहम्मद लुत्फ अल्लाखां, जहीरुद्दीन, अहमद बेग, सफदर अली, जामिन अली, इत्यादि समस्त रुड़की के मुसलमान। मिती १७ अगस्त सन् १८७८।[1]

कर्नल मानसल का हुक्म

हमारे अधिकृत क्षेत्र से इस शास्त्रार्थ का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। यदि तुम को शास्त्रार्थ करना है तो कहीं और करो। रुड़की या छावनी में इस की बिलकुल आज्ञा नहीं देते। हमारे और मजिस्ट्रेट साहब के क्षेत्र से कुछ अन्तर पर यदि तुम को करना स्वीकार है तो जाकर करो, परन्तु सावधानता पूर्वक करो, जिससे उपद्रव न हो और हमारा और मजिस्ट्रेट साहब का क्षेत्र कुछ दूर तक नहीं है और हम इस शास्त्रार्थ का निषेध नहीं कर सकते (हस्ताक्षर अंग्रेजी में) १७ अगस्त सन् १८७८।[2]

[विदित होवे कि दोनों ओर से शास्त्रार्थ के नियम ११ अगस्त सन् १८७८ को कर्नल मानसल साहब और कप्तान स्टुअर्ट साहब आफिसर रुड़की छावनी के समक्ष निश्चित हुए थे। ये नियम हम 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या १९०, भाग १, पृष्ठ २४९-२५० पर छाप चुके हैं।

मुसलमानों के समान ठा० उमरावसिंह ने भी एक पत्र कप्तान स्टुअर्ट को १७ अगस्त को लिखा था, उसे हम 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन', पूर्ण संख्या २०० (भाग १) पृष्ठ २६७ पर छाप चुके हैं। कप्तान स्टुअर्ट ने ठा० उमरावसिंह के पत्र

१. यह पत्र पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ७८२ पर उद्धृत है। २. यह पत्र पं० लेखराम कृत जीवनचरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ७८२-७८३ पर छपा है।

का जो उत्तर दिया था, उसे भी हमने वहीं (पृष्ठ २६७) पर टिप्पणी में छाप दिया है पाठक उन्हें भी देखें ।]

पृष्ठ २७७, पं० २८-२९ 'आ० स० गुजरांवाला का पत्र **परिशिष्ट** में छापा जा रहा है'—

'श्री युत पंडित आत्माराम जी योग्य नमस्ते

महाशय:—इस समय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का एक पत्र आया है जिसमें उन्होंने लिखा है कि पंडित आत्माराम जी से एक पत्र उन सन्देह मात्र बातों का जिनको वह 'सत्यार्थप्रकाश' में जैनों के मतों के विरुद्ध ठहराते हैं उनके हस्ताक्षर से हमारे पास भिजवा दो कि हम विचार पूर्वक उनका उत्तर लिख कर और अपने हस्ताक्षर करके उनके पास भेजेगें इस बात के निवेदन के अर्थ इस समाज के दो तीन सभासद आपके पास प्राप्त हुये थे, जिस पर आपने कहा था कि प्रथम इसी विषय में हम विचार कर लेवें सो विचार कर लिया होगा. महाशय ! यह सब को विदित है कि आप ही के उपदेश पूर्वक आपके सेवको ने इस विषय में पत्र स्वामी जी के नाम भेजा था और आप खुद भी अपने मुखारविंदसे यह बात कह चूके हैं. इस लिये हम लोग चिन्तन करते हैं कि यदि आपको 'सत्यार्थप्रकाश' विषयक सदेहों पर सम्मति है तो हस्ताक्षर करने के लिये आप सोच में न पड़ेंगे. और उन सब बातों का एक सूचीपत्र अपने हस्ताक्षर से शोभित स्वामी जी के पास भेजने के अर्थ हमारे पास भिजवा देंगे कि हम शीघ्र स्वामी जी के पास भेज देवें. परस्पर शास्त्रार्थ के बदले (जो आपने स्वीकार नहीं किया) आपके हस्ताक्षर युक्त सूचीपत्र पर सब बातों का निर्णय हो सकता है यदि आप भी यथावत् निर्णय को भला जान कर इस पर ध्यान देवें अन्यथा नहीं. ५ कार्तिक (२३ अक्टूबर १८८०)–

हस्ताक्षर नारायण कृष्ण आर्य समाज
गुजरां वाले की ओर से

पृष्ठ ७७, ९३ में छापे गये शास्त्रार्थ के नियमों के मौलवी मुहम्मद कासिम द्वारा पढ़े जाने के पश्चात् उक्त नियमों पर निम्न विचार प्रकट किये गये—

---

१ यह पत्र 'दयानन्द सरस्वती मुखचपेटिका' के भाग १, पृ० १६-१७ पर छपा है।

नियम एक के विषय में स्वामी जी ने कहा कि मैं शास्त्रार्थ का प्रतीक्षक नहीं रह सकता। आज से तीसरे दिन बुधवार को शास्त्रार्थ आरम्भ हो जाना चाहिये। और इस बात को मौलवी साहब ने भी स्वीकार किया। **तीसरे नियम के विषय में स्वामी जी ने कहा** कि मैं शास्त्रार्थ के भाषण का न लिखा जाना कदापि पसन्द नहीं कर सकता क्योंकि मनुष्य को बात बदलते कुछ कठिनाई नही पड़ती। इसलिये पहले मैंने यह बात उन लोगों से जो बाबू शिवनारायन साहब के साथ आये थे—निश्चित कर ली थी कि यदि मौलवी साहब शास्त्रार्थ विशेष सज्जनों की सभा में करना चाहें और भाषण के लिखने पर भी सहमत हों तो पधारकर शास्त्रार्थ के नियम निश्चित कर लें और जब उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया था तब मैंने आपको कष्ट दिया था। इसके अतिरिक्त बिना लिखे कोई बात प्रमाण के पद को नहीं पहुंचती। जिसके जी में या मुख में जो आया कहना आरम्भ कर दिया, कोई चीज इस बात को रोकनेवाली नहीं हो सकती कि जो बात एक बार कही जावे उसके विरुद्ध दूसरी न कही जावे। चाहे मुझको या आपको ऐसा कहने का अवसर मिल सकता है कि—'यह बात हमने नहीं कही थी'—यद्यपि वास्तव में कह चुके हों। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पक्ष के मनुष्य अपनी-अपनी विजय का वर्णन किया करते हैं, एक कहता है कि मैं जीता दूसरा हारा और दूसरा कहता है कि मैं जीता वह हारा। बिना लिखे वह परिणाम नहीं निकलता जो एक दूसरे को व्यर्थ बातों के रोकने को पर्याप्त हो और भाषण के लिखे जाने से यह परिणाम अत्यन्त श्रेष्ठ-रीति से प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त न कोई पक्ष और बात बदल सकता है, न वास्तविकता के विरुद्ध व्यर्थ बातें हो सकती हैं। लिखे हुए कथन को देखकर प्रत्येक व्यक्ति सन्तोष कर सकता है कि कौन जीता, कौन हारा। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव नहीं कि जैसे शब्द उस समय मुख से निकलें—उनको कोई जैसे का तैसा स्मरण रख सके और सभा में उपस्थित लोगों के अतिरिक्त और लोग शास्त्रार्थ का पूरा-पूरा आनन्द भी नहीं उठा सकते। लिखा हुआ शास्त्रार्थ जब छपकर संसार के देश-देशान्तर अर्थात् प्रत्येक नगर और ग्राम में पहुंच सकता है और प्रत्येक स्थान के निवासी उससे ऐसा आनन्द उठा सकते हैं कि मानो उसी सभा में उपस्थित थे।

मौ० मुहम्मद कासिम का मत—इस पर मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ने कहा कि लिखित शास्त्रार्थ में विचारों का आना रुक जाता है

और किन्तु निष्क्रिय हो जाता है और जब लिखित शास्त्रार्थ हुआ तो मेरी और आपकी एक सभा में एकत्रित होने की क्या आवश्यकता थी ? अपने घर बैठे तुम हम पर और हम तुम पर आक्षेप करते रहे हैं और उत्तर लिखते रहें। इस पर मिस्टर कॅस्पियन साहब, मुख्याध्यापक-गवर्नमेंट स्कूल मेरठ ने कहा कि जिस विद्वान् व्यक्ति का चित्त केवल लिखने के कारण निष्क्रिय हो जाये और उसमें विचारों का आना रुक जाये वह भी क्या अच्छा विद्वान् है कि अपनी महानता, विद्वत्ता और वर्णन-शक्ति पर जिसको इतना अधिकार नहीं कि केवल लिखे जाने तक अपने मानसिक विचारों को स्मरण रख सके और फिर अपने इच्छित आशय को प्रकट कर सके, यदि यही महानता और यही चित्त है तो उस विचार-शक्ति और विद्वत्तापूर्ण चित्त का ईश्वर ही रक्षक है।

और स्वामी जी ने यह कहा कि देखिये घर बैठे तो मुंशी इन्द्रमणि और मुसलमान परस्पर चिरकाल से आक्षेप कर रहे हैं परन्तु अब तक उसका कुछ परिणाम न निकला। यद्यपि मुंशी जी ने मुसलमानों पर वह-वह आक्षेप किये हैं कि यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो दम मारने(विश्राम लेने तक)की गुंजाइश नहीं। परन्तु तिस पर भी आप शास्त्रार्थ पर उद्यत हैं और सामने बैठकर भाषण होने और उसके कहे जाने में यह लाभ भी है कि जो पक्ष जिस पर आक्षेप करता है—उसका ठीक-ठीक उत्तर तत्काल आमने-सामने देना पड़ता है और परिणाम उसका यह होता है कि दोनों में से एक पक्ष अवश्य पराजित होता है, दूसरा विजयी। वर्षों के झगड़े कुछ दिन में निबट जाते हैं और बहुत से आक्षेपों और उत्तरों का परिणाम कुछ दिन में प्राप्त हो जाता है इसलिये मैं कहता हूँ कि सामने बैठकर शास्त्रार्थ हो और तीन लेखक बैठकर प्रत्येक प्रश्न तथा उत्तर को शब्द प्रति शब्द लिखें और तीनों पड़तों पर शास्त्रार्थ करनेवालों और सभापति के हस्ताक्षर हों। एक-एक पड़त शास्त्रार्थ करनेवालों को और एक पड़त सरकार में दाखिल कर दिया जाये ताकि कोई पक्ष अपने कथन से फिरने न पाये और किसी प्रकार का छल शास्त्रार्थ के विषय में न चल सके।

दूसरे[1] नियम के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा—कि व्याख्यान देने के

---

१. चूंकि स्वामीजी ने प्रथम तीसरे नियम के विषय में विचार किया था और तत्पश्चात् दूसरे नियम के विषय में, इसलिये यहां भी इसी प्रकार लिखा गया है।

समय तो व्याख्यान देनेवाला अपनी सम्मति और विचार और अपनी बुद्धिपूर्ण युक्तियां प्रत्येक बात के विषय में प्रकट किया करता है, दूसरे किसी को बीच में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता। जिसको अच्छा प्रतीत हो सुने, जिसको बुरा प्रतीत हो न सुने और परस्पर प्रश्नोत्तर नहीं होते ताकि कोई व्यक्ति पराजित हो कर लज्जा के कारण उपद्रव पर उद्यत न हो। [1]केवल एक दूसरे पक्ष के मत का खंडन किया करता है और वह उसका उत्तर देता है और फिर वह उस उत्तर का खंडन करता है। इसी प्रकार से जब शास्त्रार्थ में परस्पर मंडन और खंडन होता है तो जिस पक्ष से कि उचित उत्तर न बन आवे या अपने मत की निन्दा सहन न हो सके तो इसके अतिरिक्त की लज्जा अथवा चित्त की उत्तेजना के कारण मानवी स्वभाव से उपद्रव पर उद्यत हो—और कुछ नहीं बन आता। इसलिये यदि सभा में उपस्थित लोग चुने हुए विद्वान्, बुद्धिमान् और अच्छे स्वभाव के हुए तो अपनी महानता और अच्छे स्वभाव के कारण क्रोध पर नियन्त्रण करके उपद्रव पर उद्यत नहीं होते और यदि कूंजड़े, कसाई, तेली, तम्बोली, धोबी, जुलाहे, उठाईगीरे, लुच्चे, बदमाश और कुछ बुद्धिमान और अच्छे स्वभाववाले न हों और सार्वजनिक सभा हो तो तत्काल ईंटें फेंकते हैं और उपद्रव होते कुछ देर नहीं लगती।

हे महाशय ! शास्त्रार्थ तो बुद्धिमानों और विद्वानों की सभा में होता है कि जो आनन्द भी प्राप्त करें और न्याय कर सकें कि किसका कथन सच्चा है। शास्त्रार्थ असभ्य मूर्खों की भीड़ में नहीं होता। वह लोग अविद्या के कारण न समझ सकते हैं, न न्याय कर सकते हैं और प्रायः दंगा फिसाद असभ्यों में या असभ्यों के कारण से होता है इसलिये शास्त्रार्थ बुद्धिमानों ही की सभा में होना चाहिये।

इस पर **मौलवी साहब ने कहा** कि न जाने अब आप क्यों विशेष व्यक्तियों की सभा के लिये हठ करते हैं। चांदापुर जिला शाहाजहांपुर में तो आपने इस बात पर कुछ भी हठ नहीं की थी और फिर विशेष व्यक्तियों की सभा में सब लोग शास्त्रार्थ के आनन्द से लाभान्वित भी नहीं हो सकते।

स्वामी जी ने कहा कि आपने देखा नहीं कि चांदापुर में सार्वजनिक सभा होने से कैसी गड़बड़ हो गयी थी अर्थात् मेले के लिये सात दिन नियत

१. यहां 'शास्त्रार्थ में' पद छूटा प्रतीत होता है।

किये गये थे, पूरे दो दिन भी मेला न रहने पाया और दूसरे दिन लोगों ने उपद्रव कर दिया और कोलाहल मचा दिया कि मेला समाप्त हो गया और क्या आप भूल गये कि हमारे भक्तों की चौकी पर लोग जूते रख रख-कर खड़े हो गये थे और परिणाम जैसा कि अभीष्ट था—प्राप्त न हुआ। यदि चांदापुर में ही शास्त्रार्थ विशेष व्यक्तियों की सभा में हो जाता तो अब मुझे और तुम्हें फिर शास्त्रार्थ करने की क्यों आवश्यकता पड़ती। सात दिन में, सम्भव था कि, शास्त्रार्थ में भली-भांति निश्चय हो जाता जैसा कि वहां सार्वजनिक सभा होने से इच्छानुसार कोई परिणाम न निकला, ऐसा ही प्रत्येक स्थान पर होता है और होगा। मैं इसलिए शास्त्रार्थ का विशेष व्यक्तियों की सभा में होना पसन्द करता हूँ और जो यह कहते हो कि सब लोग लाभान्वित नहीं हो सकते तो मैं नहीं जानता कि आपका अभिप्राय समस्त संसार के लोगों से है या सारे मेरठ से या क्या ? यदि यह कहो कि समस्त संसार से तो फिर सारे संसार के मनुष्य कदापि एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते। यदि यह कहो कि सारे मेरठ से तो भी किसी मकान या कोठी में नहीं समा सकते। इसलिये जब आपकी सार्वजनिक सभा भी समस्त संसार या सारे मेरठ की दृष्टि से विशेष मनुष्यों की सभा है और यदि मान लो कि सारे मेरठ के मनुष्य किसी मकान में आ भी जावें तो भी दो-चार, दस-बीस हजार, मनुष्य सब के सब मेरे या आपके कथन को नहीं सुन सकते क्योंकि जो मेरे और आप के इतने समीप हों कि उनके कान तक मेरा या आपका स्वर जा सके (वही सुन सकते हैं)। फिर बताइये कि सार्वजनिक सभा में बिना लिखे सब लोग क्योंकर शास्त्रार्थ से लाभान्वित हो सकते हैं ? इसलिये मैं कहता हूँ कि बीस-बीस बुद्धिमान् और विद्वान्(दोनों पक्षों में से ले लिये जावें)। यदि दोनों पक्षों में कम से कम दो-दो, तीन-तीन सौ विद्वान् होंगे तो भी सम्भव है कि उनमें से जो अधिक से अधिक बुद्धिमान् और विद्वान् हों—वह चुन लिये जावें।

[इसी बीच में **श्री० राय बख्तावर लाल साहब सब जज** और **सय्यद जाकिर हुसैन साहब मुन्सिफ मेरठ** और **राय गनेशी लाल साहब** प्रबन्धक समाचारपत्र "प्रिंस आफ वेल्ज" पधारे। उस समय मौलवी मुहम्मद कासिम साहब नमाज पढ़ने को और दो-तीन सज्जनों सहित चले गये परन्तु शेष मुसलमान वहीं बैठे रहे।]

स्वामीजी ने सबजज साहब से कहा कि—"आज मैं और मौलवी

साहब यहां शास्त्रार्थ के नियम निश्चित करने के लिये एकत्रित हुए हैं और आप सज्जनों को भी इसी अभिप्राय से कष्ट दिया गया है। मौलवी साहब सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और भाषण का लिखा जाना स्वीकार नहीं करते। जो-जो कारण और आक्षेप इन दोनों बातों के विषय में ऊपर लिखे जा चुके हैं—वह स्वामीजी ने प्रशंसनीय महोदय से पुनः वर्णन कर दिये और यह भी कहा कि यदि मुझको बात बदलनी या छल करना अभीष्ट होता तो मैं भाषण के लिखे जाने और शास्त्रार्थ की एक पड़त सरकार में दाखिल करने की क्यों कामना करता।

मौलवी साहब ने कि जो नमाज से निवृत्त होकर आ गये थे कहा कि लिखने के कारण से भाषण के प्रवाह में अन्तर आयेगा और सार्वजनिक सभा में सब लोग अपने सामने शास्त्रार्थ होता देख लेते हैं और सबके मन की इच्छा पूर्ण हो जाती है।

इस पर **श्रीमान् सबजज साहब ने** कहा कि स्वामीजी को प्रायः सार्वजनिक सभा में मौखिक शास्त्रार्थ करने का अवसर पड़ा है और परिणाम उसका उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ न हुआ। इसलिए अब भी स्वामीजी को सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ करने से उपद्रव की आशंका है। सम्भव है कि यदि श्रीमान् डिप्टी साहब जो इस जिले में डिप्टी मैजिस्ट्रेट हैं— इस बात का उत्तरदायित्व ले लें कि हम किसी प्रकार का उपद्रव न होने देंगे तो क्या हानि है; सार्वजनिक सभा में ही शास्त्रार्थ सही।

इस पर **मौलवी कादिर अली साहब** डिप्टीकलक्टर तथा मैजिस्ट्रेट ने कहा कि मैं उपद्रव का कदापि उत्तरदायित्व नहीं ले सकता परन्तु यदि जिला मैजिस्ट्रेट साहब चाहें तो उसका प्रबन्ध सम्भव है।

इसपर, किसी ने कहा कि गवर्नमेन्ट मजहबी मामलों में कदापि हस्तक्षेप नहीं करती है। श्रीमान् जिला मैजिस्ट्रेट साहब को क्या प्रयोजन है जो शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करते फिरें। यदि आपको भी हमारे समान उपद्रव की आशङ्का है तो आप क्यों सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ होने का अनुरोध करते हैं, विशेष व्यक्तियों की सभा में शास्त्रार्थ होने को क्यों नहीं स्वीकार करते ?

स्वामीजी ने सुनकर डिप्टी साहब से कहा कि "आपको सभा के प्रबन्ध से क्या प्रयोजन है, जब किसी के चोट-फेट लगेगी तब आप छानबीन करने और उपाय करने को तय्यार होंगे और मौलवी मुहम्मद कासिम

साहब को सम्बोधन करके कहा कि मैं और आप जो कुछ कहेंगे वह लिख दिया जावेगा और सभा में उपस्थित लोगों को सुना दिया जावेगा फिर भाषण के प्रवाह में क्या अन्तर आ सकता।

नियम ४ के सम्बन्ध में स्वामीजी ने कहा कि प्रातःकाल के समय अधिकारी लोग अपनी कचहरी और न्यायालय के काम के कारण शास्त्रार्थ में सम्मिलित नहीं हो सकते इसलिये अच्छा है कि शास्त्रार्थ शाम के ६ या ७ बजे से नौ-दस बजे रात तक हो और मुसलमान लोग शास्त्रार्थ के बीच में नमाज के समय नमाज पढ़ सकते हैं, जैसा कि अब मौलवी साहब नमाज पढ़कर पधारे हैं।

नियम ५ के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि भाषण के लिये यदि समय नियत न होगा तो बड़ी कठिनाई होगी अर्थात् सम्भव है कि एक व्यक्ति चार दिन तक अपनी ही कहे जाये, दूसरे की सुने ही नहीं और समय नियत कर दिया जायेगा तो अपने समय में प्रश्न करने वाला प्रश्न करेगा, उत्तर देनेवाला उत्तर देगा और [अपने] मत की महानता वर्णन करने की शास्त्रार्थ में क्या आवश्यकता है; आप व्याख्यान देंगे या शास्त्रार्थ करेंगे जो मत की महानता वर्णन करने का पहले से ही विचार है। शास्त्रार्थ में प्रश्नोत्तर के द्वारा खंडन और मंडन होगा या मत की महानता वर्णन की जावेगी ? और हे महाशय ! वह प्रश्न कौन-सा है कि स्वयं तो एक घंटे में पूरा हो और उत्तर आधे घन्टे में पूरा हो जाये ? एक प्रश्न अधिक से अधिक पांच मिनट में और उसका ठीक-ठीक उत्तर अधिक से अधिक पाव घंटा अर्थात् १५ मिनट में अच्छी प्रकार दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ देखिये कि "परमेश्वर है या नहीं"—यह प्रश्न है और उसका उत्तर कि "परमेश्वर है"—कैसा शीघ्र पूरा हो गया। प्रायः प्रश्नोत्तर जो बहुत लम्बे समय तक होते रहते हैं—उसका यह कारण होता है कि एक प्रश्न में कुछ प्रश्न और एक उत्तर में कुछ उत्तर सम्मिलित हुआ करते हैं और जब एक ओर उसका ठीक-ठीक उत्तर हो तो कुछ अधिक समय की आवश्यकता नहीं और यदि प्रश्न के लिये एक घंटा और उत्तर के लिये आधा घंटा नियत किया जावे तो प्रकट है कि शास्त्रार्थ प्रतिदिन अधिक से अधिक तीन घंटे होगा तो इस गणना से दो प्रश्न और दो उत्तर प्रतिदिन होंगे, इस प्रकार शास्त्रार्थ के लिये भी एक सुदीर्घ काल अवधि अपेक्षित होगी; कभी समाप्त नहीं होगा। इसलिए पांच मिनट में

एक प्रश्न और १५ मिनट में उसका ठीक-ठीक उत्तर बड़ी अच्छी प्रकार से दिया जा सकता है और इस गणना से कई प्रश्नोत्तर एक दिन में हो सकते हैं और शास्त्रार्थ की समाप्ति भी सम्भव है।

नियम ६—निस्सन्देह कोई सभ्यताविरुद्ध वाक्य किसी धार्मिक नेता के सम्बन्ध में न कहा जायेगा परन्तु उनके वचनों और कर्मों पर अवश्य आक्षेप किया जायेगा इसलिये कि उसके वचनों और कर्मों के खंडन के बिना शास्त्रार्थ कब सम्भव है और यदि इस नियम से वही अभिप्राय है जो चांदापुर में वर्णन किया गया था अर्थात् मौलवी साहब ने कहा था कि जो हमारे मुहम्मद साहब को बुरा कहे—वह वाजिबुलकत्ल (मार डालने योग्य) है तो शास्त्रार्थ भी हो लिया क्योंकि कत्ल (मारने) की आज्ञा तो पहले ही हो चुकी, फिर शास्त्रार्थ कौन करेगा ?

नियम ७ के विषय में यह कहा कि जितनी भाषा मैं जानता हूँ—अत्यन्त स्पष्ट कहूँगा और यदि कोई शब्द किसी पक्ष का दूसरे की समझ में न आवे तो सभा में उपस्थित लोगों में से जो सज्जन दोनों भाषायें जानते हों—समझा दिया करें।

नियम ८, ९ के विषय में—सभा में उपस्थित लोगों को अधिकार है कि जौन-सा मकान चाहें निश्चित करें।

नियम १० के विषय में—मैं आपको छूट देता हूँ कि पहले आप ही वेद पर आक्षेप करें और मैं उत्तर दूं और उसके पश्चात् मैं कुरआन पर आक्षेप करूं और आप उत्तर दें।

मौलवी साहब ने कहा कि पंडित जी प्रश्नोत्तर के लिये बहुत थोड़ा समय नियत करते हैं, इतने समय में प्रश्नोत्तर का कार्य नहीं हो सकता इसलिये कि विषय की स्पष्टता और समयानुकूलता सब जाती रहती है।

इस पर **मिस्टर कॅस्पियन साहब ने** कहा कि साहब ! आप शास्त्रार्थ करेंगे या अलंकारों और नवीनताओं को काम में लायेंगे। अलंकारों और नवीनताओं में अवश्य स्पष्टता और समयानुकूलता की आवश्यकता होती है, शास्त्रार्थ में अलंकारों और नवीनताओं की क्या आवश्यकता है ?

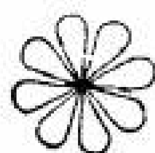
इसके पश्चात् **मुन्सिफ साहब ने कहा** कि पहले कोई मध्यस्थ अर्थात् पंच नियत कर लीजिये तब इन बातों का निश्चय होगा। इसलिये निश्चित हुआ कि श्रीमान् सब-जज साहब, मुन्सिफ साहब, मिस्टर कॅस्पियन साहब, डिप्टी साहब और पंडित गेंदनलाल साहब परस्पर सहमत

होकर जो नियम निश्चित कर दें—वह सबको स्वीकार हों। स्वामीजी ने कहा कि उपर्युक्त सज्जन एक पृथक् कमरे में जाकर इन बातों का निश्चय करें और **बाबू शिवनारायण साहब** ने उसी समय एक पृथक् कमरा फर्श और प्रकाश आदि से युक्त ठीक करा दिया परन्तु मुसलमानों ने अनुरोध किया कि इस समय नियमों का निश्चित होना स्थगित रखा जावे। इस पर **मिस्टर कैस्पियन** साहब ने पूछा कि क्या कारण है कि जो इस समय नियमों के निश्चित करने से इन्कार है? इसके उत्तर में **डिप्टी साहब** ने कहा कि मैं जब तक मौलवी साहब का हार्दिक अभिप्राय इस विषय में न जान लूं—सम्मति देना अच्छा नहीं समझता और इस समय हम कचहरी से इसी ओर चले आये हैं, दिन भर की थकान भी है, इन बातों का निश्चित होना किसी और समय पर ही स्थगित रहे तो अच्छा है और मुन्सिफ साहब तथा सदर अली साहब ने भी यही कहा।

तत्पश्चात् **स्वामीजी ने यह कहा** कि इस समय इसका निश्चित हो जाना ही उचित था परन्तु मुझको डिप्टी साहब और आप लोगों का कहना स्वीकार है। फिर निश्चय हुआ कि कल रविवार ११ मई सन् १८७९ को पांचों सज्जन मिलकर नियम निश्चित कर दें। मिस्टर कैस्पियन साहब ने कहा कि मैं कल रविवार के कारण सम्मिलित नहीं हो सकता, आप चारों सज्जन ही निश्चित कर लें, परन्तु इसके पश्चात् जब सब सज्जन कमरे के बाहर कोठी के द्वार तक ही पधारे थे कि मास्टर गेंदनलाल साहब ने ला० गंगासहाय साहब, मुन्सिफ साहब और डिप्टी साहब से यह कहला भेजा कि अच्छा हो यदि परसों शास्त्रार्थ के नियम निश्चित किये जावें ताकि मिस्टर कैस्पियन साहब भी सम्मिलित हो सकें और इस बात को तीनों सज्जनों ने स्वीकार कर लिया। परन्तु सोमवार १२ मई सन् १८७९ के दिन दोनों मास्टर साहब इस कारण कि गवर्नमेण्ट के बोर्डिंग हाउस में स्कूल के छात्रों के मध्य कुछ ऐसा उपद्रव हुआ कि स्कूलों के इंस्पैक्टर साहब तक नौबत पहुंची—सब जज साहब के बंगले पर न जा सके और विवशता के कारण से सूचना दे दी गयी। डिप्टी साहब सब जज साहब से यह कह आये थे कि और सज्जनों के आने के पश्चात् मुझको सूचना देकर बुला लें। जब कोई सज्जन वहां न पहुंचे तो सब जज साहब ने डिप्टी साहब को भी सूचना न दी। सारांश यह कि उस दिन कोई सज्जन वहां न पधारे।

तत्पश्चात् जब **सब-जज साहब स्वामीजी के पास पधारे** और कहा कि आप जानते हैं कि सार्वजनिक सभा में शास्त्रार्थ का होना अच्छा नहीं। प्रत्युत मैं स्वयं सार्वजनिक सभा में सम्मिलित नहीं हो सकता और बिना लिखे मौखिक बातों से कुछ परिणाम भी नहीं निकल सकता परन्तु मौलवी साहब को न विशेष सज्जनों की सभा पसन्द है, न लिखित शास्त्रार्थ। यदि ऐसा न होता तो १० ता० को ही नियम निश्चित न हो जाते ?

यह सुनकर सच्चे लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया कि जैसे रुड़की में मौलवी साहब यूरोपियन अधिकारियों के सामने लिखित शास्त्रार्थ और विशेष सभा को स्वीकार करके मुकर गये थे, यहां भी विशेष सभा और शास्त्रार्थ के लिखे जाने तथा प्रचलित होने को कब मानेंगे और वर्णन-शक्ति मौलवी साहब की चांदापुर के शास्त्रार्थ में प्रकट हो चुकी थी। आगे कुछ चेष्टा न हुई।" ("**आर्य्यसमाचार**" मेरठ, ज्येष्ठ मास संवत् १९३६ तदनुसार मई सन् १८७९, पृष्ठ २२ से ३६ तक)।



चतुर्थ परिशिष्ट

म० मुंशीराम सम्पादित पत्र-व्यवहार भाग १ पर श्री मामराज जी द्वारा लिखी गई टिप्पणियां

इस परिशिष्ट में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापनों का अन्वेषण और सम्पादन करने वाले श्री महाशय मामराज जी (खतौली—मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश) की म० मुंशीराम जी द्वारा प्रकाशित 'ऋ० द० का पत्रव्यवहार' प्रथम भाग में पृष्ठ के मार्जन (हाशिये) पर बहुत सी महत्त्वपूर्ण टिप्पणियां हैं। उन में कुछ टिप्पणियों में पत्र-लेखक का संक्षिप्त विवरण है और कुछ में अपने पत्र-अन्वेषण के प्रयासों का उल्लेख है।

इन टिप्पणियों से जहां कुछ ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित होंगे, वहा श्री मामराज जी ने ऋ० द० के पत्रों के अन्वेषण में कितना महान् प्रयास किया था, इसकी कुछ झलक भी पाठकों को मिल सकेगी। यदि श्री मामराज जी जैसे ऋषि-भक्त कठोर परिश्रमी ऋ० द० के पत्रों के अन्वेषण में अपने को खपा देने वाले व्यक्ति का श्री पं० भगवद्दत्त जी को सहयोग न मिलता तो निश्चय ही यह अमूल्य निधि नष्ट हो जाती।

म० मुंशीराम जी द्वारा सम्पादित पत्रव्यवहार की जिस पुस्तक पर श्री मामराज जी की टिप्पणियां हैं, उस के भीतर के मुख पृष्ठ (टाइटल पेज) पर इस प्रकार लिखा है—

इस पुस्तक में ऋषि द० के मूल पत्रों की खोज सम्बन्धी मेरे नोट हैं।

अपना पता इस प्रकार लिखा है—

वैदिक धर्मसेवक मामराज आर्य (खतौली)
(भूतपूर्व पुस्तकालयाध्यक्ष आर्य समाज)
खतौली (मुजफ्फर नगर) यू० पी०

म० मुंशीराम जी द्वारा सम्पादित पत्रव्यवहार में पत्र तिथि-क्रम से मुद्रित नहीं हुए थे। हमने उन्हें प्रस्तुत संग्रह में तिथि-क्रम **से** छापा है। अतः म० मुंशीराम जी द्वारा छापे गये पत्रव्यवहार के जिस जिस पृष्ठ पर

टिप्पणियां लिखी गई हैं उस उस पृष्ठ का हमने निर्देश न करके पत्र लेखक का नाम और भाग ३-४ की पूर्णसंख्या देकर पत्र के जिस अंश पर टिप्पणी है उसका स्थूल अक्षरों में संकेत करके उन उन टिप्पणियों को क्रमशः छाप रहे हैं। श्री मामराज जी की टिप्पणियों के आदि अन्त में ' ' चिह्न दिया है। उसके नीचे कहीं **विशेष** शब्द देकर जो टिप्पणी दी है, वह हमारी है।

[श्रीप्रसाद (जयपुर) के पूर्ण संख्या १५५ (भाग ३, पृष्ठ १२३-१२६) का पत्र, जो हमें श्री मामराज जी से मिला था, उस पर जो उन्होंने टिप्पणी लिखी थी, उसे हमने पृष्ठ १२६ के नीचे टिप्पणी में छाप दिया है। उसे पाठक वहीं देखें।]

गोपालराव हरि देशमुख का पत्र पूर्ण संख्या २२७, पृष्ठ ३१९ पर छपे पत्र पर टिप्पणी—

(१) 'श्री गोपालराव हरि देशमुख जी के पास भेजी ऋषि द० जी की ६ चिट्ठियों की नकल मैंने बा० घासीराम जी मेरठ वालों के यहां से (जो) बा० देवेन्द्रनाथ के कागजों में थी लाकर पं० भगवद्दत्त जी रिसर्च-स्कालर को देदी हैं। सो उनको **तीसरे भाग में** छाप दी हैं। ह० मामराज'

विशेष—पं० भगवद्दत्त जी ने आरम्भ में जैसे जैसे उन्हें ऋ०द० के पत्र और विज्ञापन प्राप्त होते जाते थे, छोटे छोटे भागों में छापते जाते थे। इस प्रकार चार भाग छपे थे। आगे धन की कमी से पत्र विज्ञापनों का छपना रुक गया। अन्त में श्री पं० भगवद्दत्त जी ने समस्त उपलब्ध पत्र और विज्ञापनों के एक बृहत् संस्करण का सम्पादन किया जिसे रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर ने सन् १९४५ में प्रथम बार प्रकाशित किया। संप्रति प्रस्तुत संस्करण उसका तृतीय संस्करण है। इसमें पर्याप्त पत्र और विज्ञापन ऐसे हैं, जो प्रथम बार छपे हैं।

सेवकलाल कृष्णदास का पत्र पूर्ण संख्या २४५, पृष्ठ ३४३ पं० १६—**'आपने पूर्णानन्दस्वामी को** .....' पर टिप्पणी—

(२) 'इन्हीं पूर्णानन्द स्वामी ने गुजराती में वेदविरुद्धमतखण्डन पुस्तक लिखी होगी जो मैंने आर्य समाज के विरोधी पं० रामप्रसाद हकीम बरेली वालों के पास देखी थी। मामराज हाल मन्दिर आ० स० फर्रुखाबाद यू० पी० **रात के ३ बजे नोट करा। ता० ११-१२-१९।**'

(३) 'स्वामी पूर्णानन्द का नाम पं० [लाल जी आदि] के पास भेजे

गये पत्र में स्वामी जी ने लिखा है' [द्र०–ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या ६८ भाग १, पृष्ठ ८४, पं० ६। यु० मी०]

विशेष—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ४७ (भाग १, पृष्ठ ६१-६५)पर जो विज्ञापन छपा है वह ऋ० द० की सम्मति से **स्वामी पूर्णानन्द जी** ने ही प्रकाशित किया था। वेदविरुद्धमतखण्डन का श्यामजी कृष्ण वर्मा कृत गुजराती अनुवाद सहित जो प्रथम संस्करण छपा था उस के मुख पृष्ठ पर **सम्मतिरत्र वेदमतानुयायिपूर्णानन्दस्वामिनः** छपा है।

किशन (कृष्ण) लाल अल्मोड़ा के पूर्ण संख्या ३०२, पृष्ठ ३८२, पं० १३-१४ **जैसा आपने दो पत्र मेरे पास भेजे** पर टिप्पणी—

(४) 'गोरक्षा के'

विशेष—ये दो पत्र गोरक्षा सम्बन्धी थे। इन में एक गोरक्षा के लिये सही कराने का था और दूसरा विज्ञापन पत्र के रूप में था, जिस में गो-रक्षा सम्बन्धी पत्र पर सही किस प्रकार करानी चाहिये, का निर्देश थे। ये दोनों पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, में पूर्ण संख्या ६२८ तथा ६२९ (भाग २, पृष्ठ ६६३-६६५) पर छपे हैं।

(५) इसी पत्र में पृष्ठ ३८२ पर **'पण्डित बद्रीदत्त जोशी सदर अमीन अलमोड़ा'** पर टिप्पणी—

(६) 'ये मुरादाबाद में हैं।'

बुलाकीराम गुप्त कासगंज (एटा) के पूर्ण संख्या ३०५ पृष्ठ ३८६ पं० २० पर छपे हस्ताक्षर के नीचे **'र मप्रसादशर्मा'** नाम पर टिप्पणी—

(७) 'रामप्रसाद के घर मैं गया था।'

रामनारायण मन्त्री आ० स० दानापुर के पूर्ण संख्या ३०६, पृष्ठ ३८७ पं० १०—**मथुरा में नयनसुख से मिलकर**' पर टिप्पणी—

(८) 'नयनसुख जड़िया मथुरा, इनके पास ऋषि के पत्र हैं। नैनसुख जी का (ऋषि के पास) भेजा हुआ कार्ड मेरे पास है। मामराज'

विशेष—सम्भवतः यह पत्र देशविभाजन के कारण लाहौर में नष्ट हो गया। हमें उपलब्ध नहीं हुआ।

इसी पत्र के पृष्ठ ३८८, पं० १५—**'वहां पण्डित शिवसहाया······'** पर टिप्पणी—

(९) 'यह आर्यसमाज कानपुर के मन्त्री थे।'

विशेष—इन शिवसहाय के नाम ऋ० द० का एक पत्र 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ३७ (भाग १, पृष्ठ ४६-४७) पर छपा है। दूसरा काशी की पाठशाला के लिये चन्दा उगाहने का प्रमाणपत्र पूर्ण संख्या ३५ (भाग १, पृष्ठ ४६) पर छपा है।

इसी पत्र के पृष्ठ ३८८, पं० २२-२३—'**अपना कोई सहोदर भाई भी न करेगा**' पर टिप्पणी—

(१०) 'आर्यों का प्रेम।'

चुन्नीलाल दारागंज (बिजनौर) के पूर्ण संख्या ३१४, पृष्ठ ३६३ के अन्त में छपे हस्ताक्षर पर टिप्पणी—

'इन का पता लगा लिया था कुछ नहीं मिला। मामराज'

पं० व्रजमोहनलाल इटावा के पत्र पूर्ण संख्या ३१६ पृष्ठ ४००-४०१ पर टिप्पणी—

(११) पं० व्रजमोहनलाल (देहली निवासी पं० लक्ष्मीचन्द के पुत्र थे) ऋ० द० के साथ मथुरा में पढ़ते थे। इन्होंने संवत् १६३४ में 'खटखटा बाबा' से इटावा में संन्यास लिया था। इनके पास ऋषि के पत्र अवश्य ही आये होंगे। इसका बहुत बड़ा पुस्तकालय "सरस्वती भण्डार" इटावा में है उसमें पत्रादि बन्द पड़े हैं।'

(१२) पं० कामेश्वरनाथ पुस्तकालय में काम करता है। इन्होंने मुझसे पत्रों के खोजने का वादा किया था। मामराज, इटावा। हस्तलिखित आर्ष ग्रन्थ (इस पुस्तकालय में) बहुत हैं।'

विशेष—टि० सं० ११ में लिखे 'संवत् १६३४ में संन्यास लिया था' हमारे विचार में यहां सम्भवतः 'संवत् १६४३ या १६४४' के स्थान में 'संवत् १६३४' भूल से लिखा गया है, क्योंकि पं० व्रजमोहनलाल का प्रस्तुत पत्र सं० १६३६ का है। इस सरस्वती भण्डार की छपी हुई पुस्तक सूची हमारे पास थी। जो नष्ट हो गई। यु० मी०

चन्दनगोपाल गोंडा के पूर्ण संख्या ३२६, पृष्ठ ४१० पर हस्ताक्षर पर टिप्पणी—

(१३) 'इन के घर की खोज कर चुका हूं। मामराज'

माई भगवती हरियाणा (होशियारपुर) के पूर्ण संख्या ३६२, पृष्ठ ४४६-४५१ के पत्र पर टिप्पणी—

(१४) 'भगवती देवी स्वामी जी से बम्बई में मिली थी। इन्होंने जालन्धर में पुत्री पाठशाला खोली थी।'

कोठारी चांदमल मसूदा का पत्र पूर्ण संख्या ३७२, पृष्ठ ४५४ पर छपे पत्र पर टिप्पणी—

(१५) 'कोठारी चांदमल जी से ता०········ ···मार्च सन् १९३३ में आर्यसमाज अजमेर की स्वदेशी प्रदर्शनी में मिला था। इस समय इनकी आयु अनुमान ८० वर्ष होगी, दृष्टि मन्द हो गई है। ऋषि का कोई पत्र नहीं मिला। मामराज'

भाया राजेन्द्रबहादुरसिंह भिगना का पत्र पूर्ण संख्या ३७४, पृष्ठ ४५६-४५७ पर छपे पत्र पर टिप्पणी—

(१६) 'भाया राजेन्द्र बहादुर सिंह गद्दी के मालिक हो गये हैं। आखें बिगड़ गई हैं। इन के मित्र पं० महादेवप्रसाद भिनगा वालों को मैंने कायमगंज के प्रधान आ० स० ला० गोविन्दलाल जी से पत्र लिखवा दिया है कि जो भाया साहब से पत्र ऋषि दयानन्द के लेकर लाहौर पं० भ० द० जी के पास भेज दें। मामराज कायमगंज ता० १-४-२७।'

दुर्गाप्रसाद फर्रुखाबाद के पूर्ण संख्या ३८५, पृष्ठ ४७२, पं० ११—**'मुरादाबाद निवासी रामजीलाल'** पर टिप्पणी—

(१७) 'रामजीलाल के घर की खोज मुरादाबाद जाकर की थी, पत्र नहीं मिला। मामराज।'

पं० प्रभुदयाल तेरही प्र० पलानी (बांदा) के पूर्ण संख्या ४१३ पृष्ठ ५०५ पर छपे पत्र पर टिप्पणी—

(१८) इन्हीं पं० प्रभुदयाल जी की बातें इसी के सम्बन्ध में आर्यसमाज लखनऊ में संवत् १९३३ वि० में हुई थी। देखो आर्यसमाज लखनऊ का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ ४। इन्हीं सूत्रों का जवाब ऋषि ने दिया था।

विशेष—यह इतिहास हमें प्राप्त नहीं हुआ।

कालीचरण मन्त्री आ० स० फर्रु० के पूर्ण संख्या ४२०, पृष्ठ ५१० के नीचे सेवाराम के पत्र पृष्ठ ५११, पं० ११—**'ला० निर्भयराम जी के'** पर टिप्पणियां—

(१९) **'सेठ निर्भयराम "बिसाऊ" ग्राम** (जयपुर) के रहने वाले थे। सेठ निर्भयराम जी के पास आये हुए (पत्र नग १) ऋषि द० जी के असल

पत्र से नकल करके (जो पं० गणेश प्र० जी पर हैं) पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० के पास लाहौर ता० १२-१-२७ को भेज दिया है। इन के पड़पोत ला० गोवर्धनलाल से बहुत खोज करने पर भी और पत्र नहीं मिला। इन के काम फेल होने से पुराने कागजात करीब दस बर्ष हुए नष्ट हो चुके हैं। सेठ निर्भयराम का एक पुराना चित्र मुझको मिला है। जसराज गोटोराम इन्हीं के बड़ों का नाम था। ह० मामराज फर्रुखाबाद ता० २४-१-२७।'

(२०) 'दूसरा पत्र इन्हीं के नाम का मुझको समाज के पत्रों में से मिला था वो असल पत्र लाहौर पं० भगवद्दत्त जी के पास भेज दिया।

मामराज।'

विशेष—'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के भाग १, पृष्ठ ३६६,१३-१४; ४१३,३; ४३७,२१; ४३६,२० 'जैसराज (जैसीराम) गोटेराम का उल्लेख मिलता है।

दामोदर शास्त्री नाथ द्वारा के पूर्ण संख्या ४२७ के पत्र के आरम्भ में हाशिये पर टिप्पणी—

(२१) 'रियासत उदयपुर नाथद्वारे में रामानन्द ब्रह्मचारी भी रहे थे।'

(२२) इसी पत्र के संस्कृत भाग के अन्त में टिप्पणी—

'सम्पादक—हरिश्चन्द्र मासिक पत्र।'

दुर्गाप्रसाद फर्रुखाबाद के पूर्ण संख्या ४४६, पृष्ठ ५३६ पर छपे पत्र पर टिप्पणियां—

(२३) 'राय बहादुर दुर्गाप्रसाद जी के पास आये हुए ऋषि द० जी के पत्र नग ७ नकल करके (जो पं० गणेशप्रसाद जी के पास हैं) पं० भगवद्दत्त जी के पास लाहौर तारीख १२-१-२७ को भेज दिये हैं।

ह० मामराज फर्रुखाबाद।'

(२४ 'और उनके घर की रद्दी में से निकले हुए ६ पत्र **(जो लाख से भी अधिक पत्रादि कागजों में से एक मास के करीब परिश्रम करके निकाले थे)** प० भगवद्दत्त जी के पास भेज दिये हैं। ह० मामराज रिसर्च डिपार्टमेण्ट डी० ए० वी० कालेज लाहौर, हाल फर्रुखाबाद।'

(२५) 'और एक पत्र जोधपुर से भेजा हुआ मुझ को समाज के पुराने

पत्रों को खोजने पर मिला था, वह भी लाहौर पं० भगवद्दत्त जी के पास भेज दिया था। मामराज'

पं० कालूराम शर्मा रामगढ़ जिला सीकर के पूर्ण संख्या ४५५, पृष्ठ ५३६-५४० पर छपे पत्र के हाशिये पर टिप्पणी—

(२६) 'इन के पास एक पत्र मिति माघ कृष्णा ४, सं० १९३३ का, दूसरा ता० ७ फर्वरी ७८ का है। इनको गये हुए ऋषि द० के दो पत्रों के साथ एक पत्र ता० १६ जून ७६ सं० १९३२ का लालजी बैजनाथ के नाम का भी था। [पं० कालूराम जी को लिखे गये] ऋ० द० के दो पत्र ता० २२-५-३३ को पं० रामसहाय जी अजमेर वालों ने भेजे।

(२७) पं० कालूरामजी के पास गये हुये ऋ० द० के पत्र उनकी गद्दी के मालिक स्वामी नरसिंहानन्द जी के पास हैं। पता—सेठों का रामगढ़ जिला शीकर- स्टेशन देपालपुर, वहां से तीन कोश ऊंट पर जाना होगा। देहली से हिसार होकर जाना पड़ेगा। इन पत्रों को स्वामी नरसिंहानन्द जी के पास पं० सूरजमल शर्मा अध्यापक कन्या पाठशाला रामगढ़ वालों ने देखा था, जो मुझको आज बरेली में डाक्टर श्यामस्वरूपजी सत्यव्रत की दुकान पर मिले। ह० मामराज रिसर्च डिपार्टमेण्ट डी० ए० वी० कालिज लाहौर। ता० ३०-११-२६।

(२८) पं० कालूराम का दोहता—देव शर्मा है।

[पं० कालूराम जी के सम्बन्ध में आगे पूर्ण संख्या ४८६ के पत्र के हाशिये पर दी गई टिप्पणी ३७-३८ भी देखें।

कालीचरण मन्त्री आ० स० फर्रुखाबाद के पूर्ण संख्या ४५७, पृष्ठ ५४१-५४२ पर छपे पत्र पर टिप्पणियां—

(२९) 'ला० कालीचरण जी मन्त्री आ० स० फर्रुखाबाद वालों के पास आये हुवे ऋषि द० के असल पत्र नग २१ की नकल कर के (जो पं० गणेशप्रसाद जी से मिले थे) पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० के पास लाहौर ता० १२-१-२७ को जबाबी रजिस्ट्री कराके भेज दिये हैं। ह० मामराज, हाल फरुखाबाद मन्दिर आ० स०।'

(३०) 'और पत्र नग ५ मुझको समाज के पुराने पत्रों को खोजने में मिले। वो लाहौर पं० भगवद्दत्त जी के पास भेज दिये। मामराज'

पं० शुकदेवप्रसाद अजमेर का पत्र पूर्ण संख्या ४६०, पृष्ठ ५४५ पं० २-३—**'पं० सालिग्राम जी अपने घर फरुखाबाद में है'** पर टिप्पणी—

(३१) पं० सालिग्राम के पुत्र चौबे नित्यानन्द से मैं फर्रुखाबाद में मिला था। ऋषि द० के पत्र खोजे, परन्तु नहीं मिले। **ऋषि की लिखवाई हुई सन्ध्या देखी** । मामराज ।'

पं० तारादत्त फर्रुखाबाद के पूर्ण संख्या ४७७, पृष्ठ ५६६ पर छपे पत्र के नीचे पृष्ठ ५६६-५६७ पर छोटे अक्षरों में ब्रह्मचारी रामानन्द को लिखा गया जो पत्र है, उस पर टिप्पणी—

(३२) 'रामानन्द ब्रह्मचारी तथा पं० तारादत्त तथा पं० लक्ष्मीदत्त जो सब पहाड़ी ब्राह्मण थे। "त्रिलोचन" रामानन्द का भाई था। रामानन्द का पहला नाम "राजवल्लभ" था। रामानन्द नाम स्वामी जी ने रखा था। इनके पिता का नाम शंकरानन्द था। इन का मकान फर्रुखाबाद मोहल्ला नुनिहाई साह बिहारीलाल की हवेली के पास था। जो खत्म हो चुका है। उस जगह को उनके सम्बन्धियों ने बेच दिया था। वहां अब मकान दूसरा ला० जगन्नाथ ने बना लिया है।

(३३) 'रामानन्द ब्रह्मचारी स्वामी जी की मृत्यु के बाद पं० जुगलकिशोर जी से दो वर्ष तक पढ़ते रहे थे। उनको ४ रु० मासिक परोपकारिणी सभा देती रही। फिर उन्होंने देहरे में जाकर प्रचार करने के अर्थ ब्रह्मचर्य से ही संन्यास लेकर (सन् १८८५ में) अपना नाम शंकरानन्द रक्खा और योगाभ्यास करने के लिये योगियों की खोज में गढ़ गिरनार की तरफ चले गये। यह सारा इतिहास मुझ को उन के पत्रों से ज्ञात हुआ है जो आर्यसमाज फर्रुखाबाद के पत्रों में से मिले हैं और सहर में पं० गणेशप्रसाद के साथ घूम घूम कर पूरी खोज करी थी। ह० मामराज फरुखाबाद।'

साथ में आलपिन से लगी एक चिट पर लिखा है—

(३४) रामानन्द जी ब्रह्मचारी संन्यास लेकर कर्णवास में गुफा बनाकर रहते थे। वहीं योगाभ्यास करते थे। राजघाट में यकायक ही एक दिन स्नान करते हुए अधिक तैरने से गंगा में डूबकर सं० १६६६ में मर गये। उस समय उनकी आयु अनुमान ४६ वर्ष थी। [सम्भवत: जानबूझ कर जल समाधि ले ली हो। यु० मी०]

(३५) इन के भाई त्रिलोचन फर्रुखाबाद से आकर अलीगढ़ के पास अतरौली रोड़ स्टेशन (पडावल)के पास ही एक रायपुर ग्राम में रहते थे।

कुछ काल रामानन्द जी पं० जुगलकिशोर जी से लालगढ़ी ग्राम (जो अली-गढ़ के पास है) में भी पढ़ते रहे।

ठा० नन्दकिशोरसिंह का पत्र पूर्ण संख्या ४८८, पृष्ठ ५७७, पं० ७-८ —'**आपकी आज्ञानुसार बाइबल के पूर्वापर विरुद्ध का उल्था हिन्दी में हो रहा है**' पर टिप्पणी—

(३६) 'यह पुस्तक मुझको फर्रुखाबाद से मिल गई है। मामराज फर्रुखाबाद।'

विशेष—यह हिन्दी में उल्था अमेरिका से छपी 'सेल्फ कण्ट्राडिक्शनस् आफ दी बाईबल' पुस्तक का है। इसका हिन्दी अनुवाद करने के लिये ऋ० द० ने ठा० नन्दकिशोरसिंह को लिखा था। द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ८५१ का पत्र, भाग २, पृष्ठ ८७३, पं० १६-१८। इसकी विशेष जानकारी के लिये इसी पृष्ठ की टि० १ देखें।

पं० कालूराम शर्मा का पत्र पूर्ण संख्या ४८९, पृष्ठ ५७८ पर छपे पत्र के हाशिये पर टिप्पणियां—

(३७) 'ये कालूरामजी ऋ० द० जी से शाहपुरा (राज्य) में जाकर (ता० ९ मार्च से १७ मई सन् १८८३ के बीच में) मिले थे। आर्य-धर्मेन्द्र जीवनचरित, संस्क० ४, पृष्ठ १७१ पर देखें।'

(३८) 'सांगर यह एक प्रकार फली (साग) होता है, जो राजपूताने को स्वादिष्ट भाजी (बनती) है।

विशेष—पं० कालूराम जी के सम्बन्ध में टि० सं० २६, २७, २८ भी देखें।

बिहारीलाल अमभरा का पत्र पूर्ण संख्या ५१६, पृष्ठ ६०७, पं० ३—'**मेरे से जो सेवा की आज्ञा हुई**' पर टिप्पणी—

(३९) 'कवि श्यामलदासजी इन्दौर में आंखों की चिकित्सा कराते थे। उनकी सेवा वास्ते श्री स्वामी जी ने पत्र भेजा था।'

विशेष—यह पत्र हमें उपलब्ध नहीं हुआ। उक्त पत्र के आधार पर ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन में पूर्ण संख्या ८८३ (भाग २, पृष्ठ ९०३) पर पत्र-सारांश छापा है।

पं० तारादत्त शर्मा फर्रुखाबाद के पूर्ण संख्या ५४२, पृष्ठ ६४२-६४३ पर छपे पत्र पर टिप्पणी—

(४०) 'पं० तारादत्त अपने भतीजे गोपालदत्त ओवरसियर डिस्टिक बोर्ड प्रयाग के पास रहते हैं, उनको पत्र लिखना चाहिये।'

बिहारीलाल मन्त्री वैदिक धर्मसभा जैपुर का पत्र पूर्ण संख्या ५५२, पृष्ठ ६६३, हस्ताक्षरादि के नीचे टिप्पणी—

(४१) "इस पत्र की प्रतिलिपि फर्रुखाबाद समाज के कागजों में से सन् [१९] २७ में की थी। [वह] बिना तिथि के है। मामराज, सोलन ३-९-४३।"

बालकराम वाजपेयी आ० स० अजमेर का पत्र पूर्ण संख्या ५५५, पृष्ठ ६६६, पं० २ '**स्वामी गंगेशजी**' पर टिप्पणी—

(४२) 'स्वामी गंगेश जी लखनऊ में रहते थे। इनके पास ऋषि का प्रमाणपत्र था।'

म० मुंशीराम सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र व्यवहार' भाग १ की भूमिका पृष्ठ २८ में 'पृष्ठ २२० पर **वर्णित स्वामी गङ्गेश का पता फिर नहीं मिला**' पर टिप्पणी—

(४३) 'स्वामी गङ्गेश जी लखनऊ में रहते थे। उनके पास ऋषि के पत्र थे। स्वामी गङ्गेशजी की एक कुटी और कुवा लखनऊ में बना हुआ है। यहां पर सत्यप्रकाश पाठशाला थी। उसमें वो पढ़ाया करते थे सन् [१८]७४ से १८८२ के करीब। सन् [१८]८४ के करीब उनकी मृत्यु हो गई। तब उनकी पुस्तकें वगैरा उनके शिष्य स्वामी गोवर्धनानन्द को मिली थी। उनकी कुटी एक रायबरेली के 'पुरवा बांदी' ग्राम में भी थी। उनका सब हाल प्रमाण के साथ बा० गौरीशंकरसहाय ने मुझको बताया था। मामराज लखनऊ ता० १०।३।२७।,

श्यामसुन्दरलाल मन्त्री वैदिक धर्मसभा जयपुर के पूर्ण संख्या ५६६, पृष्ठ ६८९ पत्र के अन्त में हस्ताक्षर आदि के नीचे टिप्पणी—

(४४) 'किंचित् पाठभेद वाली इस पत्र की प्रतिलिपि बिना हस्ताक्षर व तिथि की दूसरे पत्रों के साथ मुझे फर्रुखाबाद के कागजों में सन् [१९]२७ को मिली थी। उस पर नं० ६ पड़ा है। मामराज, सोलन, काहन निवास, ता० २-९-४३।'

द्वारकानाथ पटना के पूर्ण संख्या ५६८, पृष्ठ ६९१ पं० १४—**मुंशी मनोहरलाल के इहां**' पर टिप्पणी—

(४५) 'मुन्शी मनोहरलाल गुड़हट्टा पटना के रहने वाले थे। अरबी के बड़े विद्वान् थे। इन्हीं की सहायता से ऋषि द० ने सत्यार्थप्रकाश का मुसलमानों वाला समुल्लास त्यार किया था। यह बात सन् [१८]७५ की हस्तलिखित कापी में लिखी है। इसको मैंने स्वयं देखा है। मामराज लाहौर'

विशेष—ऊपर जिस हस्तलिखित प्रति का तथा मुंशी मनोहरलाल की सहायता से स०प्र० के सन् १८७५ के संस्करण के लिये तेरहवां 'कुरानमत समीक्षा' समुल्लास लिखा गया था, के सम्बन्ध में हस्तलिखित प्रति का मूल पाठ हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' भाग १, पृष्ठ ५६ के नीचे टिप्पणी में छाप दिया है, पाठक उसे अवश्य देखें।

ठा० जालिमसिंह के पत्र पूर्ण संख्या ५६६, पृष्ठ ६६५ पं० २१—**'श्रोरू चरित्र बदरी का देखकर'** पर टिप्पणी—

(४६) 'ब्राह्मण (इस) बदरी ने चौ० जालिमसिंह के लिये विष की पुड़िया देने को बनाई थी भेद खुल गया।'

इस विषय में ऋ० द० ने अपने चैत्र वदि ५ बुधवार सं० १६३६ के (पूर्ण संख्या ७७६, भाग २, पृष्ठ ८०८) पत्र में लिखा था—'यदि बद्री ब्राह्मण का विष देने का कर्म प्रसिद्ध हो गया है तो उसको जेलखाने में भेज दिया वा नहीं। ठीक सबूती हो तो उसको अवश्य जेलखाने में भिजवा देना चाहिये। जिसमे दूसरा कोई ब्राह्मण ऐसे काम करने की इच्छा न करे। बड़ा शोक है उस बद्री दुष्ट पर कि जिसकी आप लोगों ने हजारह रुपये की सेवा की और उसका फल उस कुपात्र ने प्राण लेना चाहा था।' पृष्ठ ८०६, पं० ५-१०)।

विशेष— ऋ० द० ने जहां अपने को विष देनेवाले व्यक्तियों को मुक्त करवा दिया, वहां वे बद्री को जेलखाने भिजवाने को कह रहे हैं। यहां विरोध नहीं है। ऋ० द० संन्यासी थे, उन्होंने अपने को विष देने वाले व्यक्ति को इसलिये मुक्त करवा दिया कि क्षमा करना संन्यासी का धर्म है, परन्तु लोक-व्यवहार में सब के लिये यह उचित नहीं है। अतः उन्होंने बद्री को जेलखाने भिजवाने की सलाह दी ॥'

महात्मा गांधी अपने रूप में महात्मा वा सन्त थे, परन्तु उन्होंने सन्त महात्मा के व्यवहार को लोक-व्यवहार में जबरदस्ती मनवाने के लिये जो अनेक बार अनशन (उपवास) किये वे अनुचित थे। व्यक्ति और समष्टि

के भेद को महात्मा गांधी ने समझने का प्रयास नहीं किया। यह उन के जीवन की सब से बड़ी न्यूनता थी

कृपाराम स्वामी के पूर्ण संख्या ५८२, पृष्ठ ७१२-७१४ पर छपे पत्र पर टिप्पणी--

(४७) 'स्वामी कृपाराम जी के पास गये हुवे ऋषि के असली ५ पत्रों की नकल मैं देहरादून से ले आया हूँ। ये पं० बुद्धदेव विद्यालंकार के नाना थे। मामराज लाहौर जनवरी सन् [१९]३२'

इसी पत्र में पृष्ठ ७१३, पं० १६--'लाला **रामशर्णदास जी की मृत्यु**' पर टिप्पणी—

(४८) 'ये तारीख १० मई सन् १८८३ की रात को मरे थे।'

विशेष— यहां 'रामचरणदास' होना चाहिये। ये फर्रुखाबाद के थे।

रामशरणदास मेरठ के पूर्ण संख्या ५८४, पृष्ठ ७१५-५१६ पर छपे पत्र पर टिप्पणी—

(४९) 'ला० रामशरणदास रईस मेरठ वालों के पत्र नग ४, जो ऋषि द० जी ने भेजे थे वो मैंने पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० रिसर्चस्कालर डी० ए० वी० कालेज लाहौर वालों दे दिये हैं और दूसरे लोगों के पास भेजे तथा ऋषि द० के पास औरों के आये हुवे। तथा० मुं० बख्तावरसिंह के मुकद्दमे के सम्बन्ध के कागजात आदि का बस्ता भी उनके पुत्र धनपत नरायन से लाकर ता० ८-१०-२६ को लाहौर में दे दिये हैं। ह० मामराज आर्य स० खतौली मुजफ्फरनगर।'

स्वामी ईश्वरानन्द का पत्र पूर्ण संख्या ५९७, पृष्ठ ७२४, पं० २२-२३-**'रुपये आश्वनी बदि अमावस्या को भेजे जायेंगे'** पर टिप्पणी—

(५०) "इस मनिआर्डर पर श्री स्वामी जी के हस्ताक्षर हैं [वे उस समय] जोधपुर में थे। तारीख ११ अक्टूबर सन् १८८३ लिखी है। यह मेरे पास है। जो पं० सुन्दरलाल मैनेजर वैदिक प्रेस (पोस्टमास्टर डा०) वालों के लड़के के पास (आगरे) से मिला है।" मामराज

(५१) "इस समय स्वामी जी रोगी थे। १५ अक्टूबर को जोधपुर से चले थे।"

(५२) 'पं० सुन्दरलाल जी के पुत्र पं० देवीप्रसाद जी दीक्षित बंसल प्रेस, कसेरट बाजार आगरे से ता० २५ अप्रैल सन् [१९]२७ को यह चुरा लिया था, सो खोया गया। उनके पास उपयोगी पत्र भी थे। लोभवश नहीं दिये, ऋषि के रोगी दशा में करे ह० थे इस कारण इसे चुरा लिया था।

शेष भाग उन्हीं के पास है। चोरी की वस्तु अन्त में खोई गई। ऐसा ही होना भी शिक्षा बाम्ने उचित था। मामराज ६ सी माडल टाउन(लाहौर) ता० २४-८-४३।'

विशेष—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ६४४, भाग २, पृष्ठ ६५७ पर इसी मनिआर्डर फार्म के भाग का निर्देश है। उक्त मनिआर्डर फार्म के भाग के खोये जाने से पूर्व श्री मामराज जी ने पं० घासीराम सम्पादित श्री देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग २, पृष्ठ ७०६ के सामने (सं० १६३६) में इसका ब्लाक लगवा दिया था। जो व्यक्ति उसे देखना चाहे वह उक्त जीवनचरित में देख सकता है।

मुन्नालाल भूतपूर्व मन्त्री आ० स० अजमेर का पत्र पूर्ण संख्या ६०३, पृष्ठ ७३५ पं० ८—**'पीरजी कहते हैं'** पर टिप्पणी—

(५३) 'पीरजी हकीम की बाबत देखो पृष्ठ ८७२ से ८७४ जीवन च० पं० लेखराम जी कृत।'

विशेष—यह पृष्ठ संख्या उर्दू संस्करण की है। हिन्दी संस्करण में पृष्ठ ६१६ तथा ६२२ पर मिलता है।

पं० मांगीलाल बिल्हौर का पत्र, पूर्ण संख्या ६०६, पृष्ठ ७४० पर छपे पत्र के हाशिये पर टिप्पणी—

(५४) 'पं० मांगीलाल जी जो पुराने कानपुर आ० स० के मन्त्री थे, मैं मिला था। उपयोगी कागज तो मिले परन्तु स्वामी जी का कोई पत्र नहीं मिला था। वह कहते थे कि आबू से भेजा हुआ स्वामी जी का कार्ड मेरे पास था, गुम हो गया।' मामराज।'

पं० हेतराम ताजपुर वाले के पूर्ण संख्या ६१०, पृष्ठ ७४१-७४२ के पत्र पर टिप्पणी—

(५५) पं० हेतराम जो ताजपुर जिले बिजनौर के रहनेवाले थे। ये स्वामी जी के पास लेखक का काम करते थे। (मामराज)

(५६) मथुरादास—मियामीर के पत्र पूर्ण संख्या ६१३, पृष्ठ ७४४ पर हस्ताक्षर के नीचे(नकुड़वाले) इतना संकेत मामराज जी ने लिखा है।

पं० चमूपति सम्पादित 'ऋ० द० का पत्र-व्यवहार' भाग २ पर श्री मामराज जी की टिप्पणियां

इस भाग में श्री मामराजजी की टिप्पणियां तो बहुत सी हैं, परन्तु दो

को छोड़कर सभी टिप्पणियां इस भाग में छपे ऋ० द० के 'पत्र और विज्ञापन' में कहां छपे हैं, इस के सम्बन्ध में है। शेष दो टिप्पणियां इस प्रकार हैं—

मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया के पूर्ण संख्या १५०, पृष्ठ १२१, पं० १० में **'माजी'** पर टिप्पणी—

(५७) 'माजी बड़ नागर ब्राह्मणी थी विदुषी तथा योगी थी। श्री स्वामी जी तथा ओलकाट आदि भी इनके स्थान पर जाकर मिले थे। देखो जीवनचरित्र पं० लेखराम पृष्ठ १६५।'

विशेष—उक्त पृष्ठ संख्या उर्दू संस्करण की है। हिन्दी संस्करण में १६३ पर देखें। हमने पं० लेखराम जी का इस विषय का पूरा लेख इसी संग्रह के भाग ३, पृष्ठ १२१ की टिप्पणी २ पर छाप दिया है।

मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया के पूर्ण संख्या ४००, पृष्ठ ४८४, पं० १४ में **ब्रह्मानन्द'** पर टिप्पणी—

(५८) 'अनुमान से इन का ही पत्र परिशिष्ट में है।'

विशेष—यह परिशिष्ट किस ग्रन्थ का कौन सा है? यह हमें ज्ञात नहीं हुआ।

पत्र-संकलन-विषयक श्री मामराज जी का एक पत्र[1]

पं० भगवद्दत्त के नाम

नासिकवाले किसी आढती दुकानदार[2] ने श्री स्वामी जी के नाम पत्र भेजा था, जो महात्मा मुंशीराम जी वाले पत्रव्यवहार में छपा है[3] (मेरी पुस्तक आपके यहां लाहौर [में] है) आप वहां खोजने का यत्न करें[4] कदाचित् स्वामी जी का उत्तर नाशिक वाले के यहां हो।

मामराजसिंह खतौली

१-८-४७



१. यह पत्र श्री मामराज जी के पं० चमूपति जी द्वारा सम्पादित पत्रव्यवहार भाग २ में हमें मिला। २. इनका नाम सेठ केवलचन्द खूब चन्द था।

३. पृष्ठ २९८ पर छपा है। हमारे संस्करण भाग ३ पृष्ठ ३७४-३७५ पर छपा है। ४. नासिक में पं० भगवद्दत्त जी की पत्नी के भ्राता रहते थे। संभवतः उनके द्वारा खोज कराने का संकेत है।

पञ्चम परिशिष्ट

वेद वेदाङ्ग और संस्कृत भाषा के प्रचार के लिये ऋषि दयानन्द द्वारा वैदिक पाठशालाओं की स्थापना

ऋषि दयानन्द ने प्रमुख रूप से कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व ही वेद वेदाङ्ग और संस्कृत भाषा के प्रचार के लिये वैदिक पाठशालाओं की स्थापना आरम्भ कर दी थी। पं० लेखराम जी ने इन पाठशालाओं की स्थापना का निम्न कारण बताया है—

"जब तक श्री स्वामी विरजानन्दजी जीवित रहे तब तक जो विद्यार्थी स्वामीजी को मिलता या जो उनसे विद्याभ्यास करने की इच्छा प्रकट करता, स्वामीजी—उसको अपने पत्र के साथ गुरुजी के पास भेज देते थे। कई विद्यार्थी उन्होंने ऐसे भेजे और वह महाराज जी से शिक्षा पाते रहे। जब असौज कृष्ण पक्ष त्रयोदशी संवत् १९२५ तदनुसार १४ सितम्बर सन् १८६८ को स्वामी विरजानन्द जी का स्वर्गवास हुआ—उसके पश्चात् स्वामीजी ने वैदिक पाठशालायें स्थापित करने का दृढ़ संकल्प किया।"

ऋ० द० के पत्रों में फर्रुखाबाद और काशी आदि की पाठशालाओं का उल्लेख मिलता है। ऋ० द० के सहयोगी पं० भीमसेन, पं० ज्वाला-प्रसाद और पं० दिनेशराम आदि फर्रुखाबाद की पाठशाला के ही छात्र थे। इनका उल्लेख ऋ० द० के पत्रों में मिलता है और इनके अनेक पत्र 'पत्र और विज्ञापन' के भाग ३-४ में संगृहीत हैं। इस कारण ऋ०द० द्वारा स्थापित पाठशालाओं का सम्बन्ध इस 'पत्र और विज्ञापन' संग्रह के साथ साक्षात् होने से पं० लेखराम कृत ऋषि के जीवनचरित (हिन्दी सं० पृष्ठ ८०४-८१६)के आधार पर यहां संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत करते हैं। पं० लेख-राम के अनुसार ऋ० द० ने फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, कासगंज, छलेसर, काशी और लखनऊ[1] में पाठशालाएं स्थापित की थीं।

---

१. लखनऊ की पाठशाला का वर्णन पं० लेखरामकृत जीवनचरित में नहीं है।

१—फर्रुखाबाद की पाठशाला

(संवत् १९२६ से संवत् १९३२ तक)

जब स्वामीजी ने हरिद्वार के कुम्भ से त्यागी होकर गंगातट पर घूमना आरम्भ किया तो घूमते हुए फर्रुखाबाद में भी आये और कई पंडितों से धर्मचर्चा होती रही। परिणामतः सैकड़ों धर्मात्माओं के मन स्वामीजी के उपदेशों की ओर आकृष्ट हो गये। लाला पन्नीलाल सेठ वैश्य, फर्रुखाबाद के एक प्रसिद्ध साहूकार थे—वे एक स्थान पर शिवालय बनाकर, उसमें शिवलिंग स्थापित करना चाहते थे। यह संवत् १९२५-१९२६ की बात है। इसी वर्ष स्वामीजी ने वहां आकर मूर्तिपूजन का खंडन आरम्भ किया और पंडित श्री गोपाल और हलधर ओझा आदि प्रसिद्ध पंडितों को स्पष्ट रूप से पराजित किया। परिणाम यह हुआ कि सेठ पन्नीलाल ने जब स्वामीजी से एकान्त में बैठ-बैठ कर अपने सारे सन्देह निवृत्त कर लिये तब उन्होंने बाग में उस स्थान पर संस्कृत पाठशाला खोली जहां वह शिवलिंग स्थापित करना चाहते थे।

इस बार स्वामीजी अगहन संवत् १९२५ से लेकर ६ मास तक फर्रुखाबाद में रहे और इसी बार पाठशाला आरम्भ की। ५० के लगभग विद्यार्थी एकत्रित हो गये। पहले-पहल **पंडित बृजकिशोर**[१] जी **मथुरा से** आये, ३० रु० मासिक वेतन पाते थे। विद्यार्थियों के भोजन तथा वस्त्र का सब प्रबन्ध बाबू दुर्गाप्रसाद जी की ओर से होता रहा। ला० पन्नीलालजी पंडित का वेतन देते थे। उनके बाग में पाठशाला स्थापित करके और उस का उचित प्रबन्ध करने के पश्चात् स्वामीजी वहां से पूर्व की ओर चले गये। कुछ काल तक पंडित बृजकिशोरजी पढ़ाते रहे, परन्तु जब वह छुट्टी लेकर गये तो पुनः लौटकर न आये। तब स्वामीजी ने **पंडित जुगलकिशोर** स्वसहाध्यायी को मिर्जापुर की पाठशाला से फर्रुखाबाद बुला लिया और वहां रसिक विद्यार्थी को भेज दिया। पं० जुगलकिशोर कुछ दिन ही रहे फर्रुखाबाद में उस समय ७० से १०० तक विद्यार्थी पढ़ते थे। अनुमानतः

१, ऋ० द० फर्रुखाबाद की पाठशाला के लिये पं० गङ्गादत्त जी को बुलाना चाहते थे, उन्हें मार्गव्यय भी भेज दिया था (द्र०—पत्र-विज्ञापन भाग १, पृष्ठ १६-१८) पर जब वे नहीं आये तब पं० बृजकिशोर जी को बुलाया।

डेढ़ या दो वर्ष तक लाला पन्नीलाल के आधीन पाठशाला रही। इसके अनन्तर माघ संवत् १९२७ में स्वामीजी फर्रुखाबाद आये तब पाठशाला को सेठ पन्नीलाल के बाग से उठवा कर विश्रान्त पर, जहां स्वयं ठहरे हुये थे, ले गये। वहां नये सिरे से स्वयं उसका प्रबन्ध किया। उस समय पाठशाला के सहायक सेठ हरीराम और लाला जगन्नाथ प्रसाद जी थे।

पं० जुगलकिशोर के अनन्तर **पं० उदयप्रकाश**[1] **जी** आये। ये भी स्वामी जी के गुरु-भाई थे। इनका स्वभाव विचित्र था[2]। इनको हटाने पर **पं० नन्दकिशोर** जो इसी पाठशाला के छात्र थे, पढ़ाने लगे। उनके पीछे **पं० नीलम्बर आये**। ये भी यहीं के विद्यार्थी थे।

ऋषि दयानन्द समय-समय पर यहां आते और पाठशाला का प्रबन्ध करते रहे। अन्ततः संवत् १९३३ के उत्सव में जब बम्बई से आये और वेदभाष्य करने का दृढ़ संकल्प हुआ, उस समय पाठशाला को तोड़कर सब रुपया वेदभाष्य के खर्च के लिये ले गये। यह पाठशाला ७ वर्ष और कुछ मास रही। **पंडित देवदत्त कान्यकुब्ज**, जो इस समय वैदिक पाठशाला पुराना-कानपुर के मुख्य पंडित हैं, और **पं० भीमसेनजी**, सनाढ्य ब्राह्मण जो इस समय एक प्रख्यात पंडित हैं, और "आर्य्यसिद्धान्त" नामक पत्रिका के सम्पादक हैं और **पंडित ज्वालादत्त जी शास्त्री** कान्यकुब्ज, जो वैदिक यन्त्रालय अजमेर में हैं और **पंडित दिनेशराम** जो कासगंज की पाठशाला के मुख्य पंडित हैं और देवरऊ-निवासी **पंडित कुंवरसेन इसी प्रकार और भी बीसियों विद्वान्** इसी फर्रुखाबाद की पाठशाला के विद्यार्थी रहे हैं। पं० दिनेशराम के वर्णनानुसार कुछ छात्रों के नाम ये हैं—नन्दकिशोर (फर्रुखाबाद), अजुध्याप्रसाद सरदारिया, यमुनादत्त पुष्कर-निवासी, इन्द्रमणि(बंगाल), मण्डनधर (प्रयाग), कुमारसेन(सोहना-बुलन्दशहर), बलदेव (कायमगंज) देवदत्त पोलियां निवासी आदि ५० विद्यार्थी थे।

२—मिर्जापुर की पाठशाला

ज्येष्ठ सं० १९२८ से ज्येष्ठ सं० १९३० तक

काशी-शास्त्रार्थ के पश्चात् प्रयाग के कुम्भ से होकर मिर्जापुर वालों

---

१. इन्होंने ऋ० द० कृत यजुर्वेदभाष्य के विरोध में यजुर्वेद की 'स्वरसंचारिणी' नाम की व्याख्या लिखी थी। यह हमारे पुस्तकालय में विद्यमान है।

२. द्र०—पं० लेखराम कृत जीवनचरित, हिन्दी सं०, पृष्ठ ८०७।

के प्रेम से स्वामीजी मिर्जापुर आये। इससे पहले भी एकबार आ चुके थे। इस बार फागुन संवत् १९२७ तदनुसार फर्वरी सन् १८७१ में स्वामीजी यहां पधारे और रामरत्न लड्डा के बाग में निवास किया। जो विद्यानुरागी उनके पास आता उसे पाठशाला स्थापित करने की प्रेरणा देते थे। इन्हीं दिनों सरजूप्रसाद शुक्ल के द्वारा चौधरी गुरचरनलाल से और रामगोपाल अग्रवाल से बातचीत हुई। जिस पर वह सन्तुष्ट हो गये और कहा कि सौ रुपया मासिक हम दिया करेंगे, पाठशाला स्थापित की जावे। यह बातचीत होते-होते दो मास व्यतीत हो गये। अन्ततः जेठ संवत् १९२८ तदनुसार जून सन् १८७१ में पाठशाला का प्रारम्भ हुआ। लालडग्गी के पास जो गुरचरनलाल जी का मकान है, वह पाठशाला के लिए नियत हुआ। स्वामीजी वहां पधारे हवन हुआ और मंगलार्थ महाभाष्य का पाठ करा दिया गया। दस-ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन भी दिया गया। ब्रह्मभोज की मिठाई में से स्वयं स्वामी जी ने कुछ नहीं खाया। सन्ध्या, बलिवैश्वदेव का नियम प्रचलित हुआ। जो विद्यार्थी सन्ध्या नहीं करता था और सूर्योदय से पहले नहीं उठता था वह दिन भर भोजन से वञ्चित रह कर सारे दिन गायत्री जपता था। ३०-३२ विद्यार्थी प्रविष्ट हो गये, सब को भोजन पाठशाला से मिलता था। पढ़ाने के लिये पंडित जुगलकिशोर जी मथुरा से बुलाये गये। वे अपने विद्यार्थी, कासगंज-निवासी पंडित गोपाल तथा अपने दूसरे विद्यार्थी बलदेवप्रसाद सहित यहां आये। पाठशाला स्थापित करने के पश्चात् स्वामीजी काशी की ओर चले गये और जाते समय सरजूप्रसाद शुक्ल की देखरेख में पाठशाला को छोड़ गये।

इस पाठशाला में प्रथम पंडित जुगलकिशोर, उनके पश्चात् पंडित ज्वालादत्त, फिर बलदेवप्रसाद, फिर गोपाल पंडित, फिर मंडनराम पंडित —यह लोग एक दूसरे के पश्चात् पढ़ाते रहे। यह पाठशाला तीन वर्ष तक रही अर्थात् जून सन् १८७१ से जून १८७३ तक।

३—कासगंज (जिला एटा) की पाठशाला

(ज्येष्ठ सं० १९२७ से आषाढ सं० १९३१)

कासगंज (जिला एटा) में पाठशाला की स्थापना— स्वामीजी गंगातट पर विचरते हुए और सत्योपदेश करते हुए गढ़ैय्या में आये और वहां पंडित अंगदराम शास्त्री बदरियावासी से एक महान् शास्त्रार्थ करके उसे अपना

शिष्य किया। कासगंज के लगभग एक सौ मनुष्य इकट्ठे होकर स्वामीजी को लाने के लिए सोरों में गये। इन दिनों स्वामीजी की प्रतिज्ञा थी कि हम कुछ समय तक गंगा के तट पर उपदेश करेंगे और तट छोड़कर तब जावेंगे, जब कोई पाठशाला स्थापित कर देगा। इसी प्रतिज्ञा पर कासगंज के पंडित सखानन्द जी, पंडित अजुध्याप्रसाद जी, पंडित खेरातीलाल जी रईस, नारायण ब्राह्मण रईस, गिरधारी लाल वैश्य—सब मिलाकर लगभग सौ मनुष्य वहां गये। यह वर्णन चैत या वैशाख संवत् १९२७ तदनुसार मार्च या अप्रैल सन् १८७० का है और स्वामीजी सोरों से बलदेवगिरि संन्यासी के साथ उसी की बग्घी में बैठकर कासगंज को चल पड़े। जब बग्घी नगर के पास पहुंची तो खड़ी कर दी। जब और सब साथवाले आ गये तो लोगों ने पूछा कि स्वामीजी! आपको नगर में चलने में कुछ दोष तो नहीं, अन्यथा बाहर से ले चलें। स्वामीजी उन दिनों संस्कृत में बोलते थे, कहा कि इसमें क्या दोष है? यह सब लोग स्वामीजी के साथ पैदल शनैः शनैः सोरों दरवाजे से प्रविष्ट होकर और नदरी दरवाजे से निकल कर पंडित मुकुन्दराम ब्राह्मण रईस कासगंज के बाग में जो बीच घरौना है—उसमें आकर स्वामीजी को ठहराया। दिलसुख और गिरधारी लाल की दुकान पर जो १७०० रुपये पुण्य के एकत्रित थे वह सबने मिलकर सारे ही इस पाठशाला के व्यय के लिये नियत कर दिये और पंडित दुलाराम जो स्वामीजी की फर्रुखाबाद की पाठशाला का विद्यार्थी था—उसको यहां बुलाया गया। प्रथम सूचना आयी कि वह रोगी है; जिसपर स्वामीजी खेद प्रकट करने लगे कि यदि वह मर गया तो बहुत हानि होगी क्योंकि हमारी पाठशाला का पढ़ा हुआ सुबोध विद्यार्थी है। फिर उसके नीरोग होने पर वह यहां आया और १५ रुपया मासिक पर अध्यापक होकर पाठशाला में पढ़ाने लगा। स्वामीजी ने उसका नाम बदलकर दिनेश राम रखा।

पाठशाला के नियम यह थे:—१—प्रथम सन्ध्या पढ़कर विद्यार्थी पाठशाला में भरती हों और इसी से उनकी बुद्धि की परीक्षा भी हो जावेगी।

२—अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति, वेद ये ग्रन्थ पढ़ाये जावें।

३—यदि कोई विद्यार्थी सूर्योदय से पहले उठकर सन्ध्या न कर लें तो उस दिन उसको भोजन की आज्ञा नहीं है। उसे सायंकाल की सन्ध्या करके भोजन मिले और इस बात की देखभाल हो कि वह उस बस्ती में जाकर खाना न ले।

४—विद्यार्थियों को नगर में जावे की आज्ञा नहीं; परन्तु निमन्त्रण में कभी-कभी जाने की आज्ञा है।

५-इस पाठशाला के कोष से नगर के विद्यार्थियों को भोजन न मिले, बाहरवालों को मिले।

६—उद्यमी और बुद्धिमान् विद्यार्थी के लिये खाने का विशेष प्रबन्ध किया जावे। इसी शाला के मकान के पास एक कोठरी में हवनकुंड खुदवा कर उसमें अग्निहोत्र करने की आज्ञा दी।

इस पाठशाला के सम्बन्ध में ऋ० द० ने वृन्दावन से ७ मार्च १८७४ को एक पत्र लिखा था। द्र०-ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ३४, भाग १, पृष्ठ ४५।

"विशुद्धानन्द निकल गया, इसमें जो सत्य-सत्य कारण हो, सो, शीघ्र लिख भेजना। वृन्दावन, सेठजी के बाग में पूर्व निकट मलूकदास जी का बाग—यह ठिकाना लिफाफे के ऊपर लिख दीजिये। हमको अनुमान से विदित है कि जुगलकिशोर से पढ़ाया नहीं गया होगा अथवा और कुछ कारण हुआ होगा। जो ऐसे-ऐसे विद्यार्थी चले जायेंगे तो पढ़ाने वालों की कमी गिनी जायेगी। इसका वृत्तान्त शीघ्र लिखो और कौन क्या-क्या पढ़ता है सो भी लिखना जो जैसा वर्तमान होय। संवत् १९३०।

इस पाठशाला के विद्यार्थी ये थे—१—गोपालदत्त, २—चैनसुख, ३—रामप्रसाद, ४—कल्याणदत्त, ५—कृष्णबल्लभ, ६—बुद्धसेन, ७—नारायणदत्त, ८-शंकरदत्त कासगंज-निवासी, ९—कुंवर बलालसिंह, १०-अम्बाप्रसाद, ११-कामताप्रसाद, १२-गंगाधर-सहाय नदरी, १३-गोपाल-दत्त, १४—टीकाराम, १५—शालिग्राम सहाय सहावर, १६-बिहारीदत्त, १७—देवीसहाय बरनपुर, १८—नन्दकिशोर ब्रह्मचारी, १९—देवदत्त कान्यकुब्ज, २०—छेदीलाल काजिमाबाद-निवासी, २१-पंचमदत्त, २२-जुगलकिशोर बदरम-निवासी, इनके अतिरिक्त सुन्दर, जगन्नाथ और लक्ष्मणप्रसाद वैश्य थे तथा चांदनीप्रसाद कायस्थ भी। इनके अतिरिक्त और लोग भी पढ़ते थे। सेठपुर के नारदमुनि और रुस्तमगढ़ के हरनारा-यन आदि भी विद्यार्थी थे।

४—छलेसर (जिला अलीगढ़) की पाठशाला

(मार्गशीर्ष सं० १९२७ से आश्विन १९३४ तक)

काशी-शास्त्रार्थ जीतने के पश्चात् जब संवत् १९२७ में स्वामीजी

रामघाट पर पधारे और वनखंडी महादेव रामचन्द्र जी के स्थान पर ठहरे तो कार्तिक शुक्ल चौदस को छलेसर के ठाकुर मुकुन्दसिंह जी रईस जो संवत् १९२४ में कर्णवास में ऋषि दयानन्द से मिले थे वहां गये और स्वामी जी से निवेदन किया कि मैं पाठशाला स्थापित करना चाहता हूँ। आप छलेसर चले चलें। स्वामीजी ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया और कहा कि तुम चलो, हम चौथ या पंचमी अगहन बदी संवत् १९२७ तदनुसार १२,१३ नवम्बर सन् १८७० शनिवार,रविवार को आवेंगे। ठाकुर साहब ने एक पालकी छलेसर जाकर भेज दी और हम लोगों ने छलेसर से दो मील इधर कालिन्दी नदी पर आकर स्वामीजी का स्वागत किया। १० बजे दिन के स्वामीजी वहां पधारे और वहीं उन्होंने स्नान किया और गंगारज सारे शरीर पर लगायी। कपड़ों के स्थान पर केवल एक कौपीन थी। तत्पश्चात् स्वामीजी पालकी में नहीं चढ़े; प्रत्युत सबके साथ पैदल आये। १२ बजे कस्बा छलेसर से होते हुए पश्चिम की ओर वाले बाग में जहां पाठशाला स्थापित करने की सम्मति थी—स्वामीजी पधारे। वहां स्वामी जी के लिए एक स्थान अच्छी प्रकार शुद्ध कर दिया गया था और एक पृथक् मकान स्वामीजी के लिये तीन-चार दिन में बनवा कर तय्यार कर दिया गया था। स्वामीजी के बैठने के लिए एक उत्तम देसी चौकी बिछायी गयी थी और उस पर एक बढ़िया कालीन बिछाया गया था। प्रथम स्वामी जी ने उस पर बैठने से इन्कार किया कि हमारे मृत्तिकालिप्त शरीर से यह बहुत बिगड़ जायेगा परन्तु हम लोगों के अत्यन्त अनुरोध से उस पर विराजमान हुए। अन्ततः एक-दो दिन पश्चात् पाठशाला स्थापित रखने की तिथि नियत की गयी। उस दिन हवन किया गया और ठाकुरों, पंडितों और आसपास के ब्राह्मणों में से बहुत से सज्जनों को पाठशाला के ब्रह्मभोज की सभा में बुलाया गया। ब्रह्मभोज के पश्चात् ब्राह्मण लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा कि वास्तव में हम लोग बहुत भ्रान्ति में थे; जो कुछ स्वामीजी कहते हैं वह सब सत्य है। भोजन के अतिरिक्त दक्षिणा भी दी गयी। पाठशाला के लिये **पंडित कुमारसेन दोरद** (जिला अलीगढ़) निवासी जो फर्रुखाबाद की पाठशाला का विद्यार्थी और स्वामीजी का परिचित था, बुलाया गया। पाठशाला में तीन दिन में ही बीस के लगभग विद्यार्थी एकत्रित हो गये।

इस पाठशाला के यह नियम थे कि पंडित का वेतन, विद्यार्थियों का भोजन और वस्त्र उन क्षत्रिय लोगों को छोड़कर जो दान का भोजन पसन्द

न करते थे—(पाठशाला की ओर से दिया जाता था)। और यह भी नियम किया गया था कि ऋषिकृत ग्रन्थों के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ न पढ़ाया जावे और सब विद्यार्थी दोनों समय सन्ध्या और हवन किया करें, इस पाठशाला में बहुत दूर-दूर के विद्यार्थी पढ़ते थे जैसे बनारस, साकेत, मंडी, अलीगढ़ आदि के। कुमारसेन के पश्चात् संवत् १९३१ में **पंडित दिनेशराम** जी यहां पढ़ाने आये और संवत् १९३४ के क्वार तक पढ़ाते रहे। अन्त में अभीष्ट लाभ न होने और छात्रों के फिर पूर्ववत् पोपलीला में फंस जाने तथा ठीक प्रबन्ध न होने के कारण स्वामीजी ने संवत् १९३४ के क्वार अर्थात् सितम्बर सन् १८७७ में स्वयं आकर पाठशाला को तोड़ डाला। **यह पाठशाला सात वर्ष तक रही।** इसका समस्त व्यय ठाकुर मुकुन्दसिंह जी रईस छलेसर अपनी ओर से करते रहे।

५—बनारस की पाठशाला

(पौष सं० १९३० से आषाढ़ सं० १९३३)

पाठशाला की स्थापना असीघाट बनारस-निवासी साधु जवाहरदास उदासी ने वर्णन किया कि "एक बार स्वामीजी ने हमको मिर्जापुर बुलाया और जब हम वहां पहुंचे तो हमसे कहा कि हम काशी में पाठशाला स्थापित करना चाहते हैं; आप उसकी देखभाल स्वीकार करें। हमने स्वीकार किया और परस्पर सम्मति से हम बनारस से पूर्व को और स्वामीजी बनारस से पश्चिम को चन्दे के लिये गये। हम डुमराओं, आरा, छपरा, पटना आदि नगरों में फिर कर लगभग दो मास में ४० रुपये मासिक चन्दा लिखवा कर और दो मास के ८० रुपये अगाऊ लेकर बनारस लौटे और यहां आकर वह ८० रुपये स्वामीजी के पास भिजवाये। स्वामीजी ने उस के सौ रुपये करके हमारे पास वापिस भेजे कि तुम इससे काम करो, पीछे हम और भेजेंगे। उस रुपये के आने पर हमने पौष वदी द्वितीया संवत् १९३० विक्रमी तदनुसार ६ दिसम्बर सन् १८७३ सोमवार को केदार के मन्दिर के पास एक मकान ३ रु० १२ आने मासिक किराये पर लेकर पाठशाला स्थापित की। पंडित शिवकुमार शास्त्री २५ रुपये मासिक वेतन पर व्याकरण पढ़ाने के लिये नियत किये गये। पहले दिन पांच रुपये की मिठाई निम्नलिखित पंडितों को दी गयी:—पंडित शिवकुमार, पंडित हरीकिशन, पंडित विद्याधर, पंडित व्यास जी, पंडित गणेश श्रोत्रिय, पंडित मुरलीधर, पंडित हरबंससहाय, पंडित हरिप्रकाश और एक अन्य

पंडित को एक-एक रुपया दक्षिणा सहित दी गयी। पंडित शिवकुमार जो व्याकरण पढ़ाते थे और हम तीसरे पहर जाकर योगभाष्य और न्याय-दर्शन पढ़ाते थे। ६ मास तक पाठशाला हम चलाते रहे, इसके पश्चात् स्वामीजी आये और सरजूप्रसाद बनिये के बगीचे में उतरे और पाठशाला को देखा और सब परीक्षा ली। शिवकुमार को कहा कि तुम आर्य्यधर्म का उपदेश दिया करो। उसने कहा कि इस वेतन पर नहीं, यदि पचास रुपया दो तब ऐसा कर सकता हूँ क्योंकि ऐसा करने से मेरी उपजीविका की हानि होती है। वास्तव में यह वेद का जानने वाला नहीं था, इस लिए स्वामीजी ने उसको हटा कर **पंडित गणेश श्रोत्रिय** को हमारे द्वारा बुलवा कर १५ रुपये मासिक नियत किया।

स्वामीजी ने इस पाठशाला के नये सिरे से प्रबन्ध करने का दृढ़ निश्चय कर लिया और कुछ काल वहां रहकर सब प्रकार का प्रबन्ध करना ठान लिया। इस शुभ इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन्होंने एक विज्ञापन २० जून सन् १८७४ को प्रकाशित किया। यह विज्ञापन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः यहां देते हैं:—"एक समाचार सबको विदित हो कि आपका आर्य विद्यालय काशी में संवत् १९३० पौष मास तदनुसार दिसम्बर सन् १८-७३ में केदारघाट पर आरम्भ हुआ था—वही अब मित्रपुर भैरवी मुहल्ला में दुर्गाप्रसाद मिश्र के स्थान में संवत् १९३१ मिती आषाढ़ सुदी ५ शुक्र-वार १९ जून सन् १८७४ को प्रातःकाल ७ बजे के उपरान्त आरम्भ होगा। इसका प्रबन्ध अब अच्छी प्रकार होगा। प्रातः ७ बजे से पठन और पाठन होगा। दस ग्यारह बजे तक और फिर १ बजे से पांच बजे तक। इसमें अध्यापक गणेश श्रोत्रिय जी रहेंगे। सो पूर्वमीमांसा; वैशेषिक; पातंजल; सांख्य; वेदान्त दर्शन; ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक–दश उपनिषद्;मनुस्मृति; कात्या-यन और पाराशर कृत गृह्यसूत्र—ये ग्रन्थ पढ़ाये जावेंगे। थोड़े समय के पीछे चार वेद, चार उपवेद तथा ज्योतिष के ग्रंथ भी पढ़ाये जायेंगे और एक उपवैयाकरण रहेगा वह अष्टाध्यायी, धातुपाठगण उणादिगणशिक्षा और प्रातिपदिक गणपाठ—यह पांच पाणिनि कृत और पातंजलमुनिकृत भाष्य, पिंगलमुनिकृत छन्दोग्रन्थ, यास्कमुनिकृत निरुक्त-निघण्टु और काव्यालंकार, सूत्र भाष्य इन सबको पढ़ना होगा। जिनको पढ़ने की इच्छा होवे सो आकर पढ़ें। जो विद्या और श्रेष्ठाचार की परीक्षा में उत्तम होगा—उसकी परीक्षा के पीछे पारितोषिक यथायोग्य मिलेगा। सो

परीक्षा प्रतिमास हुआ करेगी। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब पढ़ेंगे वेद पर्यन्त और शूद्र मन्त्र भाग को छोड़ के सब शास्त्र पढ़ेंगे। फिर जब-जब इस आर्य्य विद्यालय के लिये अधिक-अधिक चन्दा होगा तब-तब अध्यापक और विद्यार्थी लोगों को भी पढ़ाया जायेगा। इसकी रक्षा और वृद्धि के लिये एक आर्य्यसभा स्थापित हुई है और एक "आर्यप्रकाश" पत्र भी निकलेगा। मास-मास में इन तीनों बातों की प्रवृत्ति के लिये बहुत भद्र लोग प्रवृत्त हुए हैं और बहुत प्रवृत्त होंगे। इसी से ही आर्यावर्त देश की उन्नति होगी। इस विद्यालय में यथावत् शिक्षा दी जावेगी जिससे कि सब उत्तम व्यवहारयुक्त होंगे।

(हस्ताक्षर) स्वामी दयानन्द सरस्वती"

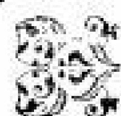
७—लखनऊ की पाठशाला

ऋ०द० ने लखनऊ में संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी, ऐसा निर्देश पं० लेखराम कृत जीवन-चरित (हिन्दी सं०) पृष्ठ ८०४ पर मिलता है, परन्तु पाठशालाओं का जो आगे विवरण दिया है उसमें लखनऊ की पाठशाला का वर्णन नहीं किया है। इसका क्या कारण है? हम नहीं कह सकते।

ऋ० द० ने लखनऊ में संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी, इस का कहीं से हमें संकेत नहीं मिला। हां, लखनऊ के श्री गङ्गेश स्वामी 'सत्य-प्रकाश' नाम की संस्कृत पाठशाला चलाते थे, इसका निर्देश बालकराम वाजपेयी के पूर्ण संख्या ५५५ (भाग ३, पृष्ठ ६६६, पं० १-३) के पत्र में मिलता है। पूर्व पृष्ठ ८०२ पर मुद्रित श्री मामराज जी की संख्या ४३ की टिप्पणी से पता चलता है कि यह पाठशाला सन् १८७४ से १८८२ तक चलती रही। सन् १८८४ में श्री गङ्गेश स्वामी का स्वर्गवास हुआ था।

८—दानापुर की पाठशाला

ऋ० द० के १६ मार्च १८७९ के लाला माधोलाल मंत्री आ० स० दानापुर को लिखे पत्र से विदित होता है कि आ० स० दानापुर ने भी संस्कृत पाठशाला आरम्भ करने का उद्योग किया था। द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्णसंख्या २९३ का पत्र (द्र०—भाग १, पृष्ठ ३३२, पं० ८-१०)। यह पाठशाला आरम्भ हुई वा नहीं, इसका हमें ज्ञान नहीं है।



षष्ठ परिशिष्ट

मुद्रण के पश्चात् उपलब्ध विज्ञापन

विज्ञापन (१)

[1]यदि कोई सज्जन सभा का प्रबन्ध कर दे और उस सभा में कोई गोलमाल भी न होने पाये और बिना पक्षपात के कार्य होवे तो पण्डित गट्टूलाल जी स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करके इस बात की मीमांसा कर सकते हैं कि कौन विषय सत्य और धर्मसङ्गत है।

कार्तिक कृष्णा १[2] सं० १९३१ आर्यजनहितेच्छु

—:०:—

१. यह विज्ञापन 'आर्यजन हितेच्छु' के नाम से पं० गट्टूलाल के पक्ष की ओर से छपा था। द्र० पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित, पृष्ठ २९८।

२. यह गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार है (उ० भारतीय पञ्चाङ्गानुसार मार्गशीर्ष कृष्णा १)तदनुसार २४ नवम्बर, सन् १८७४। इसके उत्तर में किशनसिंह बाबा द्वारा दिया गया विज्ञापन पं० देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० भाग १ पृष्ठ २९८ पर छपा है। अतः यह विज्ञापन 'पत्र विज्ञापन' के भाग १-२ में संकलित नहीं हुआ है तथा इसके अगले विज्ञापन के साथ सम्बन्ध है इस कारण यहां छाप रहे हैं—

जब तक महाराजा लोग अपने नाम से सभा नहीं बुलाते और प्रकट रूप में विश्वास नहीं दिलाते कि उक्त सभा में कोई गोलमाल नहीं होगा और विज्ञापन में स्पष्ट रूप से यह नहीं लिखा जाता कि किस विषय पर विचार होगा तब तक स्वामी जी किसी सभा में जाकर शास्त्रार्थ करने को उद्यत नहीं होंगे। किशन बाबा

कार्तिक कृष्णा ५ सं० १९३१। यहां कार्तिक कृष्णा ७ होनी चाहिये, क्योंकि इसके उत्तर में लिखे गये विज्ञापन में सप्तमी का निर्देश है। देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २९८ पर तिथि अशुद्ध छपी है। उ० भारतीय मार्गशीर्ष कृष्णा ७=३० नवम्बर १८७४।

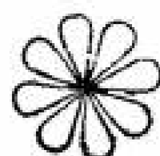
विज्ञापन (२)

[1]दयानन्द सरस्वती स्वामी का निमन्त्रण अर्थात् दयानन्द सरस्वती का प्रति निमन्त्रण

आपने सं० १९३१ कार्तिक कृष्णा सप्तमी[2] को विज्ञापन प्रकाशित किया था कि "आर्य लोग सत्यभाव से प्रेरित होकर विना पक्षपात के आर्य धर्म की आलोचना करें, यह हमारी इच्छा है।" इस विषय की आलोचना के लिये हम प्रतिदिन सभा का अधिवेशन करने के इच्छुक हैं। बहुत शताब्दियों से आर्य लोग जिस भ्रमजाल में पड़े हैं, उससे उन्हें निकालने के लिये ही ऐसी ऐसी सभा करके आर्य साधारण को उत्तेजित करना हमें वाञ्छनीय है।

३ दिसम्बर कार्तिक कृष्णा १०

गोविन्द बालकृष्ण, लालजी मुरार जी, दामोदर माधव जी, नागरदास परमानन्द दास, हरिलाल मोहनलाल



१. यह विज्ञापन देवेन्द्रनाथ सं० जी० च० पृष्ठ २९८ पर छपा है।

२. उ० भारतीय मार्ग० कृष्णा ७=३० नवम्बर १८७४। इससे स्पष्ट है कि किशन बाबा ने अपना विज्ञापन कार्तिक कृष्णा ७ को दिया था, न कि पञ्चमी को जैसा कि उक्त जीवनचरित में छपा है।

सप्तम परिशिष्ट

ऋ० द० को लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों (भाग ३-४) में

उद्धृत वचनों की सूची

१. विश्वारूपाणि (यजुः १२,३) वैश्यों की गायत्री मानी जाती है। द्र०—पार० गृह्य० १।३।६ कर्क आदि के भाष्य।

अष्टम परिशिष्ट

ऋ० द० को लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों (भाग ३-४) में

उल्लिखित ग्रन्थ[1]-नाम

---

१. समाचार पत्रों के नाम भी इस सूची में दिये हैं।

२. इसके नाम द्र०—पृष्ठ ३३३, पं० ५-६।

१. द्र०—'आर्य पत्र' तथा 'आर्यपत्रिका' शब्द।

२. द्र०—'आर्य' शब्द।

३. द्र०—'प्रश्नोत्तरी' शब्द।

४. द्र०—'उवाई सूत्र टीका सहित' शब्द।

---

१. इनके नाम द्र० पृष्ठ ३३३, पं० ९-१२।

२. द्र०—'उपवाई सूत्र' शब्द

३. द्र—भूमिका, भाष्यभूमिका, वेदभाष्यभूमिका शब्द।

४. इनके नाम द्र० पृष्ठ ३३३, पं० १२-१४।

१. द्र०—'चन्द्रपन्नतीसूत्र' शब्द।

२. द्र०—'चन्द्र पन्नत्तिसूत्र' शब्द।

३. इनके नाम द्र०—पृष्ठ ३३३, पं० १४-१६।

१. यहां 'टवा' या 'टव्वा' नाम छूटा है। द्र०—पृष्ठ ३३३, पं० २२ तथा २८। इसके सम्मिलित होने पर ही पांच अवयव=पंचाग बनते हैं।

२. इनके नाम द्र०—पृष्ठ ३३३, पं० १६-१८।

---

१. द्र०—'महाभाष्य' शब्द।

२. योग अथवा योग दर्शन शब्द भी देखें।

३. द्र०—'आर्य प्रश्नोत्तरी' शब्द।

१. अर्थात् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका।

१. इसके नाम द्र०—पृष्ठ ३३३, पं० ५-६।
२. द्र०—'पातञ्जल योगसूत्र' शब्द।

१. अर्थात् ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका।

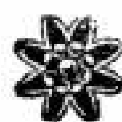
२. अर्थात् शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण।

३. शिक्षा वेदाङ्ग शिक्षान्तर्गत अयोगवाह।

---

१. यह पत्र उदयपुर से छपता था।

२. अर्थात् 'पञ्चमहायज्ञविधि' द्र०—७२७, पं० २०।



नवम परिशिष्ट

ऋ० द० को लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों (भाग ३-४) में

उल्लिखित देश नगर नदी नामों की सूची

---

१. द्र०—'अफ्रीका' शब्द। २. द्र०—'अमरीका' शब्द।

३. द्र०—'इलाहाबाद' और प्रयाग' शब्द।

---

१. द्र०—'आबूगिर' 'आबूराज' 'आभुजी' 'आभू' शब्द।

२. द्र०—'आबू' शब्द।

३. द्र०—'इन्दोर' 'इन्दौर' 'ईंदोर' शब्द।

४. द्र०—'अलाहाबाद' और प्रयाग शब्द।

५. अर्थात् उदयपुर 'उदयपत्तन' 'उदेपुर' 'ऊदेपुर' शब्द।

१. द्र०—'उदयनगर' 'उदयपत्तन' 'उदेपुर' शब्द।

२. द्र०—'काछोला' 'ककछोला' शब्द। ३. द्र०—'चाणोदकन्याली' शब्द।

४. द्र०—'कालिका' शब्द। ५. द्र०—'कालका' शब्द।

६. द्र०—'काशीपुरी', 'कांसी' 'बनारस' शब्द।

१. यह 'जतकरण' की खांप आदि का वाचक शब्द है अथवा 'कोटाहाला' 'सम्प्रति कोटा में वर्तमान' अर्थ का वाचक है, यह सन्दिग्ध है।

१. अर्थात् सोरों घाट। २. द्र०—'कन्याली' शब्द।
३. द्र०—'चित्तोड़' 'चित्तौड़गढ़' 'चित्तौड़' 'चीतोड़' 'चीतौड़' शब्द।
४. द्र०—'जैपुर' तथा 'सवाई जयपुर' शब्द।

---

१. द्र०—'जयपुर' 'सवाई जैयपुर' शब्द । २. द्र०—'जोधपुर' शब्द ।

३. द्र०—'जोधपुर गढ' 'योधपुर' शब्द ।

४. द्र०—'देहली' शब्द ।

१. द्र०—'दिल्ली' शब्द ।

२. द्र०— 'नये नगर' 'नव्यैनगर' 'न्यायनगर' तथा 'ब्यावर' शब्द ।

३. द्र०—'नसीराबाद छावनी' शब्द ।

४. द्र०—'नयानगर' 'नयेनगर' तथा 'ब्यावर' शब्द ।

---

१. द्र०—'पुना' 'पुने' 'पूना' शब्द।
२. द्र०—'प्रयागराज' 'प्रीयाग' 'अलाहाबाद' 'इलाहाबाद' शब्द।
३. द्र०—'प्रयाग' की टिप्पणी।
४. द्र०—'फिलोर' शब्द।
५. द्र०—'फीरोजपुर' शब्द।
६. द्र०—'फलोर' शब्द।
७. द्र०—'फिरोजपुर' शब्द।

---

१. द्र०—'काशी' शब्द। २. द्र०—'मुम्बई' 'मुम्बाई' 'मोहमयी' शब्द।

३. द्र०—'बांसबरेली' शब्द।

४. द्र०—'बरेली शब्द। 'रायबरेली' के प्रतिपक्ष में 'बरेली' के लिये 'बांस बरेली' शब्द का प्रयोग होता है। यहां किसी समय बांस के वृक्षों की बहुतायत थी। द्र०—'उलटे चले बांस बरेली को'। बरेली से बांसों का निर्यात तो युक्त है परन्तु बरेली को बांसों का जाना उलटी गति है। इसी प्रकार की उलटी गति को लक्ष्य में रखकर भाषा में इस मुहावरे का प्रयोग होता है।

---

१. द्र०— 'नयानगर' 'नयेनगर' 'नैयनगर' 'न्यायनगर' शब्द ।

२. द्र०— 'मसौदे'— 'मसौदा' शब्द ।

३. द्र०— 'बम्बई' शब्द ।

१. द्र०—'मुल्कतान', 'मुल्तान' 'मूलत्राण' शब्द।

२. द्र०—'मुलतान' शब्द।

३. द्र०—'मुम्बई' 'बम्बई' शब्द।

४. द्र०—'जोधपुर' शब्द।

१. द्र—'लन्दन' शब्द । २. द्र०—'लण्डन' शब्द ।
३. द्र०—'लाहौर' शब्द । ४. द्र०—'लवपुर' शब्द ।
५. द्र०—'सखर' (सिन्ध) शब्द । ६. द्र०—'शिमला' 'शीमला' शब्द ।

---

१. द्र०—'शाहजहांपुर' शब्द। २. द्र०—'सहारनपुर' शब्द।

३. द्र०—'शाहपुर' 'शाहपुरा' 'शायेपुर' 'सायपुर' 'सायेपुर' 'साहायपुर' 'साहिपुरा' आदि शब्द। ४. द्र०—'शहाजहांपुर' शब्द भी।

५. द्र०—'सिकारपुर' शब्द। ६. द्र०—'शमल:' 'सिमला' शब्द।

७. द्र०—'सीकर' शब्द।

८. यह स्टेशन ब्यावर और अजमेर के बीच में है। यहां से मसूदा समीप में है।

९. द्र०—'जयपुर' 'जैपुर' शब्द।



१. द्र०-'सायपुरा' 'सायेपुरा' 'साहायपुर' 'साहिपुरै' 'शाहपुर' 'शाहपुरा' शब्द।
२. द्र०—'शिकारपुर' शब्द।
३. द्र०—'शिमला' 'शमलः' शब्द।

दशम परिशिष्ट

ऋ० द० को लिखे गये पत्रों और विज्ञापनों (भाग ३-४) में

उद्धृत व्यक्ति और संस्था

[इस सूची में पत्रों में यथा-प्रयुक्त अशुद्ध प्रयोगों का भी संग्रह किया है। इस से उस समय के एक ही शब्द के विविध प्रयोगों का परिज्ञान हो जायगा।]

१. द्र०—उमरदान' शब्द।

१. द्र०—'आल्काट' 'कर्नल आल्काट' 'हेनरी ऐस० अल्काट' शब्द ।
२. द्र०—'आत्मानन्द सरस्वती' शब्द । ३. द्र०—'आनन्दीलाल' शब्द ।
४. द्र०—'आनन्दलाल' (बाबू) शब्द ।

---

१. द्र०—'गुजरांवाला आर्यसमाज' शब्द।

२. द्र०—'औलकाट' 'कर्नल आलकाट' शब्द। ३. द्र०—'मुन्शी इन्द्रमणि' शब्द।

१. द्र०—'श्रीमान्, श्रीमानो' शब्द। २. द्र०—'पुरोहित उदयलाल' शब्द।
३. द्र०—'उदयलाल पुरोहित' शब्द। ४. द्र०—'अमरदान' शब्द।
५. द्र—'एच. ओ. ह्यूम साहब' तथा 'एच. यू. होम शब्द।

---

१. द्र०—'एच. ओ. होम' शब्द। २. द्र०—'एच० पी० ब्लैवेटस्की' शब्द।

३. द्र०—'कर्नल आलकाट—आल्काट' शब्द

४. द्र०— 'अलकाट' 'आलकाट' 'औलकाट' शब्द।

---

१. अर्थात् कविराज श्यामलदास।

२. द्र०—'श्यामलदास कविराज' शब्द।

३. द्र०—'मुहम्मद कासिम" शब्द।

४. द्र०—'कृष्णलाल वैश्य डाक्टर' शब्द।

---

१. द्र०—'कृष्णलाल भट्ट' शब्द।

२. द्र०— 'बारहट किशनसिंह' 'बारहट कृष्णसिंह' 'कृश्न जी' शब्द।

३. द्र०—'किशनलाल साह' शब्द। ४. द्र०—'किशनसिंह बारहट' शब्द।

५. द्र०—'केशवलाल निर्भयराम' शब्द। ६. द्र०—'केशवलाल' शब्द।

१. द्र०—'क्षात्रपाठशाला' 'क्षात्रशाला' शब्द।
२. द्र०—'क्षात्रशाला' 'क्षत्रिय पाठशाला' शब्द।
३. द्र०—'क्षत्रिय पाठशाला' 'क्षात्रपाठशाला' शब्द।

१. द्र०—'आर्यसमाज गुजरांवाला' शब्द ।

१. द्र०—'गोपालराव हरि देशमुख' शब्द।

---

१. द्र०—'चिरञ्जीवलाल कन्हैयालाल' शब्द।

२. द्र०—'छगनलाल (पण्डित शर्मा)' 'छगनलाल श्रीमाली' शब्द।

३. द्र०—'छगनलाल द्विवेदी' शब्द। ४. द्र०—'छगनलाल द्विवेदी' शब्द।

५. द्र०—'छीत्रदत्त' शब्द।

१. द्र०— 'उज्ज्वल जयकर्ण' शब्द। २. द्र०— 'जवाहरसिंह' शब्द।

१. द्र०—'जवाहरसिंह' शब्द। २. द्र०—'श्री हजूर साहेबा' शब्द।

१. द्र०— 'तेजसिंह रावराजा' शब्द।

१. द्र०—'तेजसिंह' शब्द। २. द्र०—'छगनलाल द्विवेदी' शब्द।
३. द्र०—'दयानन्द' 'पण्डित दयानन्द सरस्वती', 'स्वामी दयानन्द सरस्वती'।
४. द्र०— 'दयाराम मास्टर' शब्द। ५. द्र०—'दयाराम बाबू' शब्द।
६. द्र०—'दामोदर पण्डित' शब्द।

---

१. द्र०—'छगनलाल द्विवेदी' 'छगनलाल श्रीमाली' शब्द।

---

१. द्र० —'दयानन्द सरस्वती', 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' शब्द ।

१. अर्थात् 'स्वामी विरजानन्द सरस्वती'।

२. द्र०—'प्रतापसिंह महाराजा' शब्द।

३. यहां 'प्रीतमदास' शुद्ध पाठ होगा।

४. अर्थात् मौलवी मुहम्मद अब्दुल्ला।

५. द्र०—'राणा फतहसिंह' 'राजराणा फतहसिंह' शब्द।

---

१. द्र०—'मुंशी' 'मुन्शी बख्तावरसिंह' शब्द।

२. द्र०—'डी० डी० एस, श्री हिजूर, श्री हिजूर साहेबा, हजूर सहाब' शब्द।

३. द्र०—'बहादुर सिंह' शब्द।

१. द्र०—'बार्ट किसनसिंह' तथा 'कृष्णसिंह बारहट' शब्द।

२. द्र०—'बारहट कृष्णसिंह' शब्द।

३. द्र०—'बालमुकुन्द परसराम' शब्द। ये दोनों एक ही हैं। तुलना करो—पूर्ण संख्या २५०(पृष्ठ ३४७) तथा ४२० (पृष्ठ ५११) के पत्रों की। पूर्णसंख्या २७२, पृष्ठ ३५८, पं० २६ में निर्दिष्ट प्रयागस्थ बालमुकुन्द अन्य व्यक्ति प्रतीत होता है।

४. द्र०—बालमकन्द शब्द पर टिप्पणी। ५. द्र०—'बालमकन्द' शब्द।

६. द्र०—'बिट्ठल भाणा' 'बिट्ठल रसोइया' 'बिट्ठल ब्राह्मण' शब्द।

१. द्र०—'बहादुर सिंह' शब्द।
२. द्र०—यही व्यक्ति 'भगतसिंह सरदार'।
३. द्र०—यही व्यक्ति 'भगतसिंह इञ्जिनियर'।

१. द्र०—'जवाहरसिंह' शब्द।
२. द्र०—'भाग्यराम' शब्द।
३. द्र०—'भागराम' शब्द।

---

१. द्र०— भाग ३, पृष्ठ ५१२।
२. द्र०—'जगदम्बिका प्रतापबहादुर सिंह' शब्द।
३. द्र०—'महाराजा होलकर' शब्द।
४. द्र०—'नाहरसिंह, शाहपुराधीश, शाहपुरानरेश' शब्द।
५. द्र०—'महाराजा इन्दौर' शब्द।

१. द्र०—'सज्जनसिंह महाराणा' शब्द।
२. द्र०—'मुन्शी समर्थदान' शब्द।

---

१. द्र०—'मुंशी बख्तावरसिंह' शब्द।

२. दोनों अलग-अलग व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

३. द्र०—'समर्थदान' शब्द। ४. द्र०— 'आर्यसमाज बम्बई' शब्द

५. द्र० —'आर्यसमाज मुरादाबाद' शब्द।

---

१. अर्थात् मूल जी ठाकर सी। २. द्र०—'आर्यसमाज' मेरठ' शब्द।

३. द्र०—'मेरठ आर्यसमाज' शब्द।

४. द्र०—'ब्लेवेत्सकी मैडम' शब्द।

५. श्री गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र।

६. द्र०—'मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या' शब्द।

१. द्र०—'वैदिक यन्त्रालय' शब्द भी।
२. द्र०—'आर्यकुलदिवाकर' शब्द।
३. द्र०—'जोधपुर नरेश', 'जोधपुराधीश', 'महाराजा जोधपुर' शब्द।
४ दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं, लेखक भेद से दो प्रकार से लिखे गये हैं।
५. रणजीतसिंह ठाकुर (जयपुर)।
६. द्र०—'गोपालराव हरि देशमुख' शब्द।

१. द्र०—'राजराणा फतहसिंह' शब्द।
२. पत्र में भूल से 'रामशर्णदास' (मेरठ) लिखा गया है।
३. 'रामानन्द' अशुद्ध छपा है। 'रामनाथ' होना चाहिये।

१. इसने बम्बई में ऋ० द० से शास्त्रार्थ किया था।(द्र०—यही भाग ३, पृष्ठ ५४७, पं० ३-४)। इन्होंने कालान्तर में ऋ० द० के सम्बन्ध में कहा था। 'उनका यावत् कथन शास्त्रानुसार सत्य ही सत्य है।' द्र०—श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क, पृष्ठ २६३ (आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट देहली का संस्करण)।

२. यहां भूल से 'रामचर्णदास' की जगह रामशर्णदास लिखा गया है।

३. द्र०—'रामसेवक पण्डित' शब्द।

४. द्र०—'रामशरणदास' शब्द।

५. द्र०—'रामसहाय (लाला)' शब्द।

६. द्र०—'रामशेवक' शब्द।

७. द्र०—'वाजपेयी' शब्द।

१. ये राव तुलाराम रिवाड़ी के थे। इन्होंने सन् १८७५ के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम में विशेष योगदान दिया। उस में बलिदान दिया। इन्हीं के पुत्र राव युधिष्ठिर सिंह थे, जिन्होंने ऋषि दयानन्द को रिवाड़ी निमन्त्रित किया था। द्र०—पत्र और विज्ञापन, भाग ३, पृष्ठ ८७, पूर्णसंख्या ११३।

२. द्र०—'बहादुरसिंह रावराजा' शब्द।

३. द्र०—राव तुलाराम की टिप्पणी।

४. द्र०—'बहादुरसिंह' शब्द।

५. गोपालराव हरि देशमुख के पुत्र।

६. द्र०—'लक्ष्मण गोपालदेशमुख' शब्द।

१. द्र०—'लाल जी महाराज' शब्द।

२. द्र०—'लालजी बैजनाथ(व्यास)' शब्द।

३. द्र०—'आर्यसमाज लाहौर' शब्द।

४. द्र०—'लाहौर आर्यसमाज' 'आर्यसमाज लाहौर' शब्द।

५. द्र०—'लीलाधर हरिदास' शब्द।

१. द्र०—'रामाधार वाजपेयी' शब्द ।

२. द्र०—'श्री स्वामी जी' 'प्रज्ञाचक्षु महाराज' आदि शब्द ।

३. सम्भवतः यहां 'विश्वेश्वर सिंह' ही अभिप्रेत है।

१. द्र०—'वैदिक प्रेस' शब्द। २. द्र०—'शंकराचार्य' शब्द।
३. द्र०—'शङ्कर स्वामी' शब्द।
४. अर्थात् शिमला आर्यसमाज।
५. द्र०—'श्याम जी, श्याम जी कृष्ण वर्मा' शब्द।

---

१. द्र०—'श्यामलदास' शब्द।
२. अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती।
३. द्र०—'शालग्राम लाला' शब्द।
४. द्र०—'शालिग्राम' 'शालिकग्राम' 'सालिगराम' (अजमेर) शब्द।
५. द्र०—'शालग्राम' 'शालिग्राम' 'सालिगराम' शब्द।
६. द्र०—'श्रीमानों, श्री हजूर, हजूर' शब्द
७. द्र०—'शिवदयालु' शब्द दोनों एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं।
८. द्र०—'शिवदयाल' दोनों एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं।
९. ये तीन नाम एक ही व्यक्ति के प्रतीत होते हैं।

---

१. द्र०—'लखीमदास खीमजी शेख' शब्द।

२. द्र०—'सेवकलाल कृष्णदास' शब्द।

३. द्र०—'सांवलराम', 'कवी', 'सांवलदास कवी' तथा 'कविराज' शब्द।

४. दोनों नाम एक ही व्यक्ति के प्रतीत होते हैं।

५. द्र०—'श्याम सुन्दर', 'श्याम सुन्दरदास' शब्द।

---

१. अर्थात् स्वामी विरजानन्द सरस्वती ।

२. अर्थात् जोधपुर नरेश ।

३. द्र०—'महाराणा सज्जनसिंह' शब्द ।

---

१. यह स्वतन्त्र नाम है अथवा पूर्व पठित किशन नारायण के साथ सम्बद्ध है, यह विचारणीय है। 'सनरमक' शब्द का अर्थ भी ज्ञात नहीं होता।

२. द्र०—'सबलसिंह', 'सबलसिंह काका' शब्द।

३. द्र०—'समर्थदान' शब्द और उसकी टिप्पणी।

४. द्र०—'समर्थदान लाला' 'मुन्शी' तथा 'मुंशी समर्थदान' शब्द।

५. द्र०—'मुंशी समर्थदान' शब्द।

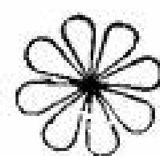
६. अर्थात् दयानन्द सरस्वती।

७. द्र०—'सांवलदास' 'शामलदास, 'श्यामलदास' 'कवी' और 'कविराजा' शब्द।

---

१. द्र०—'शालिग्राम, सालिगराम' शब्द। २. द्र०—'शालिग्राम' शब्द।
३. 'श्यामलदास' शब्द की टिप्पणी। ४. द्र०—'शेवकलाल' शब्द।

१. अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती।
२. अर्थात् स्वामी विरजानन्द सरस्वती।
३. द्र०—'दयानन्द सरस्वती', 'पं० दयानन्द सरस्वती' शब्द।
४. द्र०—'हरिश्चन्द्र चिन्तामणि' शब्द।



१. द्र०—'ह्यूम' शब्द। २. द्र०—'अलकाट' शब्द।
३. द्र०—'ए० ओ० होम', 'हूम मिस्टर' शब्द।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

वेद-विषयक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य**—(संस्कृत-हिन्दी; ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रति भाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां हैं। प्रथम भाग अप्राप्य, द्वितीय भाग ४०.००, तृतीय भाग ५०.००

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग २००.००, द्वितीय भाग १००.००

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्रसूची सहित। १००.००

४. **तैत्तिरीयसंहिता-पदपाठ**—दाक्षिणात्यपाठानुसारी। बृहद् आकार में। पृष्ठ संख्या ६७०। १५०.००

५. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय कृत। १-३ काण्ड ५०.००, ४-५ काण्ड ५०.००, ६ काण्ड ५०.००, ७-८ काण्ड ५०.००, ९-१० काण्ड ५०.००, ११-१३ काण्ड ५०.००, १४-१७ काण्ड ५०.००, १८-१९ काण्ड ५०.००, बीसवां काण्ड ५०.००।

६. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त। मूल्य ५०.००

७. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका-परिशिष्ट**—भूमिका पर किये गये आक्षेपों के ग्रन्थकार द्वारा दिये गये उत्तर। ५.००

८. **भूमिका-भास्कर**—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, दो भागों में पूर्ण, प्रथम भाग २००.००, दूसरा भाग १५०.००।

९. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठ**— १००.००

१०. **गोपथ-ब्राह्मण (मूल)**—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों में अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। ८०.००

११. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—(**प्रथम भाग**) पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेद विषयक १९ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह। ७५.००

१२. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—(**द्वितीय भाग**) पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित वेदाङ्गादि विषयक निबन्धों का अपूर्व संग्रह। १००.००

१३. कात्यायनीय **ऋक्सर्वानुक्रमणी**—(ऋग्वेदीया)—षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित। इसमें ऋग्वेद के प्रतिमन्त्र ऋषि देवता और छन्दों का संकलन है। इस संस्करण में टीका का पूरा पाठ प्रथम वार छापा गया है। विस्तृत भूमिका और अनेक परिशिष्टों से युक्त। १५०.००

१४. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कट माधवकृत। इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है। प्रत्येक वेदार्थ के जिज्ञासु के लिये यह ग्रन्थ परम उपयोगी है। व्याख्याकार—श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। ५०.००

१५. **वैदिक-साहित्य-सौदामिनी**—स्व० श्री पं० वागीश्वर वेदालङ्कार कृत काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि के समान वैदिक साहित्य पर शास्त्रीय विवेचनात्मक ग्रन्थ। ७०.००

१६. **ऋग्वेद की ऋक्संख्या**—लेखक—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५.००

१७. **वेद-श्रुति-आम्नाय-संज्ञा-मीमांसा**—(संस्कृत-हिन्दी) इसमें सप्रमाण दर्शाया गया है कि मन्त्रों की ही वेदसंज्ञा है। युधिष्ठिर मीमांसक। ३.००

१८. **वैदिक-छन्दोमीमांसा**—वैदिक छन्दःशास्त्र सम्बन्धी पांच प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर प्रत्येक छन्द के भेद-प्रभेद और उदाहरण दिये हैं। लेखक—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५०.००

१९. **वैदिक-स्वर-मीमांसा**—वेद में प्रयुक्त उदात्तादि स्वरों का विस्तृत विवेचन किया गया है। स्वर-शास्त्र के अज्ञान के कारण होनेवाली भूलों का निदर्शन एवं स्वरभेद से होनेवाले अर्थभेद को दर्शाया है। लेखक—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५०.००

२०. **वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन प्रकार**—लेखक—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। १०.००

२१. **वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय, वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक मीमांसा**—(संस्कृत-हिन्दी) लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। २५.००

२२. **देवापि और शन्तनु के आख्यान का वास्तविक स्वरूप**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। ८.००

२३. **वेद और निरुक्त**—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। ३.००

२४. **निरुक्तकार और वेद में इतिहास**—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। ३.००

२५. **त्वाष्ट्री सरण्यू की वैदिक कथा का वास्तविक स्वरूप**—लेखक—पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य। ३.००

२६. **कतिपय वैदिक-शब्दों के अर्थों की मीमांसा**—पं० ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर। ५.००

२७. **वैदिक-जीवन**—श्री विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड द्वारा अथर्ववेद के आधार पर वैदिक जीवन के सम्बन्ध में लिखा गया अत्यन्त उपयोगी स्वाध्याययोग्य ग्रन्थ। अजिल्द ३०.००, सजिल्द ४०.००।

२८. **वैदिक-गृहस्थाश्रम**—श्री विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड द्वारा अथर्ववेद के आधार पर लिखित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। सजिल्द ५०.००

२९. **पुरुषार्थ प्रकाश**—लेखक—श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी और ब्र० नित्यानन्द जी महाराज। ४०.००

३०. **यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा**—लेखक—पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। २०.००

३१. **शतपथब्राह्मणस्थ अग्निचयन समीक्षा**—लेखक—पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। ६०.००

३२. **ऋग्वेद-परिचय**—श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यामार्तण्ड। ऋग्वेद का परिचयात्मक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। अजिल्द २०.००, सजिल्द २५.००।

३३. **क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?**—लेखक—श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री। १५.००

३४. **उरु-ज्योति**—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित वेदविषयक स्वाध्याययोग्य निबन्धों का संग्रह। सुन्दर छपाई, पक्की जिल्द। २५.००

३५. **वेदों की प्रामाणिकता**—डा० श्रीनिवास शास्त्री। ४.००

३६. ANTHOLOGY OF VEDIC HYMNS—Swami Bhumananda Sarasvati. १००.००

कर्मकाण्ड-विषयक ग्रन्थ

३७. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्**—(दर्शपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायणकृत भाष्य सहित (संस्कृत)। ६०.००

३८. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्**—(आधान-प्रकरण)—सुबोधिनीवृत्ति और आधान प्रक्रियासहित (संस्कृत)। ६०.००

३९. **दर्शपूर्णमास-पद्धति**—पं० भीमसेन कृत भाषार्थ सहित। ३०.००

४०. **शतपथ के दशपथ**—डा० वेदपाल सुनीथ। दोनों भाग ४०.००

४१. **शतपथ-सुभाषित**—डा० वेदपाल सुनीथ १०.००

४२. **कात्यायन-गृह्यसूत्रम्** (मूलमात्र)—अनेक हस्तलेखों के आधार पर हमने इसे प्रथम बार छापा है। २५.००

४३. **श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्**—(संस्कृत) अग्न्याधान से अग्निष्टोम पर्यन्त अध्वर्यु पदार्थों का विवरणात्मक ग्रन्थ। ५०.००

४४. **श्रौत-यज्ञ-मीमांसा**—(संस्कृत-हिन्दी) लेखक—पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक। इसमें श्रौतयज्ञों की उत्पत्ति, प्रयोजन, उनमें परिवर्तन तथा पशुयज्ञों पर विस्तार से विवेचना की गयी है। ४०.००

४५. **संस्कार-विधि**—स्वामी दयानन्द सरस्वती। अजिल्द २०.००, सजिल्द २५.००।

४६. **संस्कार भास्कर**—संस्कारविधि की स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती कृत व्याख्या। १५०.००

४७. **वेदोक्त संस्कार-प्रकाश**—पं० बाला जी विट्ठल गांवस्कर द्वारा मूल मराठी में लिखे ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद। इसी का गुजराती अनुवाद संशोधित संस्कार-विधि का आधार बना। २५.००

४८. **संस्कार-विधि-मण्डनम्**—संस्कार-विधि की व्याख्या। लेखक—वैद्य श्री रामगोपाल जी शास्त्री। १२.००

४९. **अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय**—इस ग्रन्थ में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, सुपर्णचिति सहित सोमयाग, चातुर्मास्य और वाजपेय आदि यागों का वर्णन है। ३०.००

५०. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन के मन्त्रों की पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित। व्याख्याकार—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। १२.००

५१. **वैदिक नित्यकर्म-विधि**—(मूलमात्र)—सन्ध्या तथा स्वस्तिवाचन आदि बृहद् हवन के मन्त्रों सहित। २.५०

५२. **पञ्चमहायज्ञविधि**—ऋषि दयानन्दकृत संस्कृत-हिन्दीभाष्य ५.००

५३. **वैदिक यज्ञों का स्वरूप**—लेखक—डा० कृष्णलाल। १०.००

५४. **सन्ध्योपासन-अग्निहोत्र-विधि**—अंग्रेजी-हिन्दी। अनुवादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधि। १५.००

५५. **महर्षि दयानन्द की दृष्टि में कर्मकाण्ड**—लेखक—डा० निरूपण विद्यालङ्कार। ६०.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, (सोनीपत-हरियाणा)

रामलाल कपूर एण्ड सन्स, २५६६, नई सड़क दिल्ली

रामलाल कपूर एण्ड सन्स, गुरु बाजार अमृतसर



लेखक का जीवन-परिचय

नाम– म० म० पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक।

जन्म– २२ सितम्बर, सन् १९०९ ई०।

जन्मस्थान– विरकच्यावास (विरञ्च्यावास), अजमेर (राजस्थान)।

शिक्षा– प्रारम्भिक शिक्षा पाँचवीं तक जन्मस्थान पर, तत्पश्चात् 'विरजानन्द आश्रम' हरदुआ गंज, अलीगढ़ आदि स्थानों पर पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आदि विद्वानों के सान्निध्य से सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन।

अध्यापन– विरजानन्द आश्रम (लाहौर, वाराणसी, बहालगढ़), महर्षि दयानन्द स्मारक महाविद्यालय (टंकारा), पाणिनीय संस्कृत सान्ध्य महाविद्यालय (भुवनेश्वर, उड़ीसा) तथा अन्य अनेक स्थलों पर भी स्वतन्त्र रूप से अध्यापन कार्य एवं रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रधान पद पर रहते हुए आजीवन कुशल सञ्चालन किया।

लिखित ग्रन्थ– संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (दो भाग), वैदिक-स्वरमीमांसा, वैदिक-छन्दोमीमांसा, वैदिक-सिद्धान्तमीमांसा, श्रौत-यज्ञ-मीमांसा आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का लेखन।

सम्पादित ग्रन्थ– निरुक्त-समुच्चयः, भागवृत्ति-संकलनम्, दशपाद्युणादिवृत्तिः (दो भाग), शिक्षा-सूत्राणि, क्षीरतरंगिणी, दैवम् (पुरुषकार-वार्त्तिकोपेतम्), काशकृत्स्न-धातुव्याख्यानम्, माध्यन्दिन-पदपाठः, महाभाष्यम् (हिन्दी-व्याख्या दो अध्याय पर्यन्त), ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन (चार भाग) आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन।

विशिष्ट सम्मान एवं पुरस्कार– सन् १९७७ ई० में भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'राष्ट्रिय पण्डित', आर्यसमाज सान्ताक्रुज (मुम्बई) द्वारा सन् १९८५ ई० में ७५ सहस्र रुपये से सम्मानित, सन् १९९४ ई० में उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा एक लाख का 'विश्वभारती' पुरस्कार, स० सं० विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा 'महामहोपाध्याय' की उपाधि दी गई।

निधन– २८ जून सन् १९९४ ई०।